श्रीः

श्रीश्रीआचार्यचरितम् ।

भाषाटीकासहितम् ।

——:◌०*०◌:——

श्रीश्रीराधाकृष्णाभ्यान्नमः ।

श्रीमते भगवन्निम्बार्काय नमः ।

भक्तार्त्तिघ्नमहौषधं भवभयध्वंसैकदिव्यौषधं,
तापानर्थकरौषधं निजजने संजीवनैकौषधम् ।
व्यामोहोद्दलनौषधं मुनिमनोवृत्तिप्रवर्त्तौषधं,
कृष्णप्राप्तिकरौषधं पिबमनोनिम्बार्कनामौषधम्

भक्तों की पीड़ा को दूर करनेवाले औषध, भवभय के ध्वंस करनेवाले प्रधान दिव्यौषध, तापों के अनर्थ करनेवाले औषध, निजजनों में सञ्जीवन के एकमात्र औषध, व्यामोह के दलन करनेवाले औषध, मुनियों की मनोवृत्तियों के प्रवर्तक औषध, और श्रीकृष्ण की प्राप्ति करनेवाले औषध, ऐसे निम्बार्क-नाम औषध को हे मन! तू पान कर ॥१॥

माथुरे मथुरायां च पुण्यद्रुमलताश्रये ।
नानापक्षिगणाकीर्णे पुण्यसत्त्वनिषेविते ॥२॥

माथुरमण्डल की श्रीमथुरापुरी में, पवित्र वृक्षावलियों और लताओं के आश्रय में, अनेक पक्षियों और पवित्र जन्तुओं से सेवित ॥ २ ॥

ध्रुवक्षेत्रे महापुण्ये यत्र सिद्धिं ध्रुवो गतः ।
तत्रासीनं गुरुं श्रीमद्धरिव्यासं महामुनिम् ॥३॥

महापवित्र श्रीध्रुवक्षेत्र में, जहां श्रीध्रुवजी सिद्धि को प्राप्त हुए थे, वहां पर विराजमान गुरुवर श्रीमद्हरिव्यासदेव महामुनि को ॥३॥

सर्वतत्त्वोपदेष्टारं ज्ञानभक्तिप्रवर्त्तकम् ।
योगाधीशं त्रिकालज्ञं संप्रदायप्रवर्त्तकम् ॥ ४ ॥

जो सब तत्त्वों के उपदेष्टा, ज्ञान और भक्ति के प्रवर्तक, योगाधीश, त्रिकालज्ञ और सम्प्रदाय के प्रवर्तक थे ॥ ४ ॥

दीक्षिता चंडिका येन ज्ञानभक्तिप्रभावतः ।
व्यासदेव इति प्राहुस्तं देवा हरिशब्दतः ॥ ५ ॥

जिन्होंने निजज्ञान और भक्ति के प्रभाव से चण्डिका को चेली किया और जिन्हें देवता 'श्रीहरिव्यासदेवजी' के नाम से पुकारते थे ॥ ५ ॥

सर्वे परशुरामाद्याः स्वभूदेवादयोपरे ।
सर्वे सर्वविदो धीराः पप्रच्छुरिदमादरात् ॥६॥

उन श्रीहरिव्यासदेवजी से श्रीपरशुराम आदिक तथा श्रीस्वभूदेवादिक सर्वविद् धीरों ने आदरपूर्वक यह पूछा ॥ ६ ॥

भगवन्सर्वधर्मज्ञ सर्वधर्मप्रवर्तक ।
ब्रूहि नः श्रद्दधानानामाचार्य्यचरितं शुभम् ॥७॥

हे भगवन्, हे सर्वधर्मज्ञ, हे सर्वधर्मप्रवर्तक,

हम श्रद्धावानों को आप शुभ और कल्याणकारक श्रीआचार्यचरित सुनाइए ॥ ७ ॥

श्रीमन्निम्बार्कमाचार्य्यमस्माकं कुलदैवतम् ।
सुदर्शनावतारं हि प्राहुराय्र्याः प्रमाणतः ॥ ८ ॥

आर्यों ने शास्त्रों के प्रमाणों से हमारे कुलदेव सुदर्शनावतार श्रीमन्निम्बार्काचार्य को कहा है ॥८॥

वयं तद्विस्तरात्सर्वं श्रोतुमिच्छामहे प्रभो ।
श्रीमन्निम्बार्कदेवस्य चरितं श्रवणामृतम् ॥९॥

हे प्रभो ! श्रीमन्निम्बार्कदेव के श्रवणामृतचरित को हमलोग विस्तारपूर्वक सुनने की इच्छा करते हैं ॥ ८ ॥

इति जिज्ञासुभिः शिष्यैः संपृष्टः सर्वतत्त्ववित् ।
कृपया परया युक्तो हरिव्यासो महामुनिः ॥१०॥

इस प्रकार जिज्ञासु शिष्यों के पूछने पर सर्वतत्त्ववित् और परमकृपायुक्तमहामुनि श्रीहरिव्यासदेवजी ने ॥ १० ॥

हार्द्दं तेषां तु विज्ञाय स्मृत्वाचार्य्यपदाम्बुजम् ।
प्रेमगद्गदया वाचा प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥ ११ ॥

उन शिष्यों के हृद्गत भाव को जानकर और श्रीमदाचार्यचरण का स्मरण कर प्रेमगद्गद-वाणी से चरित कहने का विचार किया ॥ ११ ॥

श्रीराधिकामाधवकेलिकुञ्जे,
प्राप्ताभिषेकं निजदैशिकं वै।

श्रीभट्टदेवं प्रणिपत्य भूयो ,
वक्ष्ये चरित्रं परमं पवित्रम् ॥ १२ ॥

श्रीराधामाधव के केलिकुञ्ज में अभिषेकप्राप्त निजगुरु श्रीभट्टदेवजी को प्रणाम करके पुनः परम पवित्र चरित कहते हैं ॥ १२ ॥

श्रीहंसं श्रीकुमारांश्च नारदं निम्बभास्करम् ।
भाष्यकारं प्रणम्याथ वक्ष्ये तच्चरितं शुभम् ॥ १३ ॥

श्रीहंसभगवान्, श्रीसनकादिक, श्रीनारद, श्रीनिम्बार्काचार्य तथा भाष्यकार श्रीश्रीनिवासाचार्य को प्रणाम करके मङ्गलचरित कहते हैं ॥ १३ ॥

यदा यदा हि धर्मस्य क्षयो वृद्धिश्च पाप्मनः ।
तदा तु भगवानीश आत्मानं सृजते हरिः ॥ १४ ॥

जब जब धर्म का क्षय और पाप की वृद्धि होती है, तब तब हरि, ईश, भगवान् अपने को प्रकट करते हैं ॥ १४ ॥

अवतारा ह्यसंख्याता भूभारक्षपणाय च ।
आत्मज्ञानोपदेशाय धर्मसंरक्षणाय च ॥ १५ ॥

श्रीभगवान् के असंख्य अवतार भूभार के दूर करने के लिये, आत्मज्ञान के उपदेश करने के लिये और धर्म की रक्षा करने के लिये होते रहते हैं ॥ १५ ॥

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥ १६ ॥

हे भारत ! जब जब धर्म की ग्लानि होती है

और अधर्म का उत्थान होता है, तब तब हम अपने को प्रकट करते हैं ॥ १६ ॥

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ॥१७॥

साधुओं के परित्राण के लिये, दुरात्माओं के विनाश के लिये और धर्म के संस्थापन के लिये हम युग युग में प्रकट होते हैं ॥ १७ ॥

इदं भगवतादिष्टं स्वभक्तायार्जुनाय च।
तत्त्वज्ञानोपदेशायावतारा वहुधा मता ॥१८॥

यह उपदेश अपने भक्त अर्जुन को श्रीभगवान् ने किया था, अतएव तत्त्वज्ञान के उपदेश के लिए श्रीभगवान् के बहुत प्रकार के अवतार हैं ॥ १८ ॥

देवहूतिसुतं हंसं सनकं नारदं तथा।
ऋषभं च पृथुं व्यासं नरनारायणावृषी ॥१९॥

कपिल, हंस, सनक, नारद, ऋषभ, पृथु, व्यास, नरनारायण ऋषी ॥ १९ ॥

दत्तं सुदर्शनं विद्धि धर्मसंरक्षणाय वै।
आत्मज्ञानोपदेशाय ह्यवतीर्णं हरिं स्वयम् ॥२०॥

दत्तात्रेय और श्रीसुदर्शन को श्रीहरि का अवतार जानो, जो धर्म की रक्षा के लिये और आत्मज्ञान के उपदेश के लिए हुए हैं ॥ २० ॥

हंसस्वरूप्यवददच्युत आत्मयोगं,
दत्तः कुमार ऋषभो भगवान् पिता नः।

विष्णुः शिवाय जगतामिति शास्त्रमारा-
न्नारायणो रुचिर हंसवपुर्बभूव ॥२१॥

श्रीनारदजी ने श्रीवसुदेवजी से कहा है कि श्री हंसस्वरूप अच्युत भगवान् ने आत्मयोग कहा है और दत्तात्रेय, चतुःसन, ऋषभदेव, और हमारे पिता ब्रह्मा ने भी आत्मयोग कहा है। जगत् के कल्याण के लिये मधुसूदन श्रीविष्णु अवतार धारण कर मधु दैत्य द्वारा हरी गई श्रुतियां ले आए थे ॥ २१ ॥

अत्र हंसाबतारस्तु कुमारानुग्रहाय वै ।
तत्त्वज्ञानोपदेशाय श्रीमद्भागवते तथा ॥२२॥

यहां पर श्रीकुमारों के अनुग्रह के लिये जो श्रीहंसावतार तत्त्वज्ञानोपदेश के लिये हुआ है, वह कहते हैं; जैसा कि श्रीमद्भागवत में है ॥ २२ ॥

तप्तं तपो विविधलोकसिसृक्षया मे,
आदौ सनात्स्वतपसः स चतुःसनोऽभूत् ।
प्राक्कल्पसंप्लवविनष्टमिहात्मतत्त्वं,
सम्यग्जगाद मुनयो यदचक्षतात्मन् ॥२३॥

श्रीब्रह्माजी का वचन है कि हमने विविध लोकों की रचना के लिये सृष्टि के आदि में तप किया और उस तप को भगवान् के अर्पण करने से उस तप के प्रभाव से आदि में स्वयम् भगवान् ही चतुः-सनकादिरूप से अवतीर्ण हुए। उन्होंने प्राक्कल्प के प्रलयकाल में विनष्ट हुए आत्मतत्त्वज्ञान को

पुनः भलीभांति प्रकाशित किया, जिसे मुनियों ने भी अपने आत्मा में देखा ॥ २३ ॥

स एष प्रथमं देवः कौमारं सर्गमास्थितः ।
चचार दुःश्चरं ब्रह्मा ब्रह्मचर्यमखंडितं ॥ २४ ॥

वे श्रीब्रह्माजी प्रथम कौमारसर्ग में स्थित होकर अखण्डित दुश्चर ब्रह्मचर्य धारण करते हुए ॥२४॥

कार्तिके शुक्लपक्षे वै नवम्यां शुभवासरे ।
ब्रह्मणो मनसो जाताश्चत्वारः सनकादयः ॥२५॥

कार्तिक शुक्ला नवमी के दिन शुभ वासर में ब्रह्मा के मन से चारों सनकादिक प्रकट हुए ॥२५॥

कारुण्यामृतसागरोतिविवशाञ्जीवानवोधावृतान्पश्यन्नात्मदयावशेन् भगवान्कौमारवेशं वयधात् । यो वै ज्ञानविरागभक्तिसहितं तत्त्वं परं चादिशत्तं सर्वार्थविधायकं भवहरं श्रीमत् कुमारं भजे ॥ २६ ॥

अति विवश और अवोध से आवृत्त जीवों को देखकर कारुण्यामृतसागर श्रीभगवान् ने अपनी दया के वशवर्ती होकर कौमारवेश को धारण किया, जिन्होंने ज्ञान, वैराग्य, और भक्ति के सहित परम तत्त्व का उपदेश किया; उन सर्वार्थदाता और भव-भय के हरनेवाले श्रीकुमारों को हम भजते हैं ॥२६॥

साक्षात् भगवता प्रोक्तमापन्नायोद्धवाय च ।
लीलावतारचरितं श्रीमद्भागवते स्फुटम् ॥२७॥

साक्षात् श्रीभगवान् ने शरणागत उद्धव से श्रीहंसावतारचरित को कहा है, जो श्रीमद्भागवत में वर्णित है ॥२७॥ ÷

श्रीभगवानुवाच

एतावान् योग आदिष्टो मच्छिष्यैः सनकादिभिः
सर्वतो मन आकृष्य मय्यद्धावेश्यते यथा ॥२८॥

श्रीभगवान् ने कहा,– हे उद्धव ! हमारे शिष्य सनिकादिकों ने भी यही उपदेश किया है कि सब ओर से मन को खींचकर हम में लगावे ॥२८॥

इति भागवते स्कन्दे द्वितीये ब्रह्मवाक्यतः ।
श्रीहंसस्यावतारत्वप्रसिद्धिःसर्वसम्मता ॥२९॥

इस प्रकार भागवत् के द्वितीय स्कन्द में ब्रह्मा के वाक्य से श्रीहंसावतार की प्रसिद्धि सर्वसम्मत है ।। २८ ।।

एकादशे उद्धव उवाच।

यदा त्वं सनकादिभ्यो येन रूपेण केशव।
योगमादिष्टवानेतद्रूपमिच्छामि वेदितुम् ॥३०॥

श्रीउद्धवजी ने कहा,–हे केशव ! आपने जब और जिस रूप से सनकादिकों को परमात्मतत्त्व का उपदेश किया, आपके उस रूप के जानने की मेरी इच्छा है ॥३०॥

÷ श्रीहंसावतारचरित पुस्तकाकार छपकर तयार है। चार आने भेजकर श्रीसुदर्शन प्रेस, वृन्दावन से मगा लीजिए ।

श्रीभगवानुवाच ।

पुत्रा हिरण्यगर्भस्य मानसाः सनकादयः ।
पप्रच्छुः पितरं सूक्ष्मां योगस्यैकान्तिकीं गतिम् ॥३१

श्रीभगवान् ने कहा कि हे उद्धव ! ब्रह्मा के मानस-पुत्र सनकादिकों ने अपने पिता (ब्रह्मा) से भगवत्तत्त्व-विषयक योग के सूक्ष्म साधन को पूछा ॥३१॥

सनकादय ऊचुः ।

गुणेष्वाविशते चेतो गुणाश्चेतसि च प्रभो ।
कथमन्योन्यसंत्यागो मुमुक्षोरतितितीर्षोः ३२

श्रीसनकादिकों ने ब्रह्मा से पूछा कि हे प्रभो ! गुणों में चित्त का प्रवेश होता है और वे गुण चित्त में प्रविष्ट होते हैं, ऐसी अवस्था में संसार से मुक्त होने की इच्छा करनेवाले मनुष्यों के चित्त और विषयों का परस्पर छुटकारा कैसे होसकता है ॥३२॥

श्रीभगवानुवाच ।

एवं पृष्टो महादेवः स्वयंभूर्भूतभावनः ।
ध्यायमानः प्रश्नबीजं नाभ्यपद्यत कर्मधीः ३३

श्रीभगवान् ने कहा,-हे उद्धव ! सनकादिकों के ऐसे आश्चर्यजनक तथा अश्रुतपूर्व प्रश्न को सुनकर सृष्टि के रचनेवाले, देवाधिदेव, स्वयम्भू (ब्रह्मा) यह विचारने लगे कि 'इस प्रश्न का क्या उत्तर है !' किन्तु कर्म में आसक्तबुद्धि होने के कारण वे उस प्रश्न के हेतु को नहीं जान सके ॥३३॥

स मामचिन्तयद्देवः प्रश्नपारतितीर्षया ।
तस्याहं हंसरूपेण सकाशमगमं तदा ॥ ३४ ॥

उस समय उस प्रश्न से पार होने की इच्छा से ब्रह्मा ने हमारा चिन्तन किया, तब हम हंसरूप से ब्रह्मा के सन्मुख प्राप्त हुए ॥३४॥

सनत्कुमारागमे च ।

उर्ज्जे सिते नवम्यां च हंसो जातः स्वयं हरिः ।
तत्त्वज्ञानोपदेशाय सर्वलोकहिताय च ॥ ३५ ॥

सनत्कुमार-आगम में लिखा है कि कार्तिक-शुक्ला नवमी (अक्षयनवमी) के दिन स्वयम् श्रीहरि ने तत्त्वज्ञान के उपदेश और सब लोगों के हित के लिये हंसस्वरूप धारण किया ॥३५॥

शुद्धस्फाटिकदिव्यचारुवपुषं,दिव्याङ्गभूषाम्बरम्
पक्षालङ्कृतचारुबाहुनिकरं,ब्रह्मेशशेषार्च्चितम्॥
तत्त्वातत्त्वविवेचनाय निपुणं,कारुण्यसिन्धुं मुदा
तंश्रीमाधवमादिवीजमनिशं,हंसावतारं भजे ॥

श्रीहंसभगवान् का ध्यान यह है,-शुद्धस्फटिक के समान सुन्दर शुक्ल वर्ण, दिव्य अङ्गों में सुन्दर भूषण और वसन धारण किए हुए, पक्षालंकृत, शोभायमान चारों वाहु, ब्रह्मा शिव और शेष से पूजित, तत्त्व और अतत्त्व के विचार करने में परम कुशल, करुणासागर, आदिवीज, श्रीमाधव, हंसावतार का हम नित्य भजन करते हैं ॥३६॥

पुनः श्रीभागवत एव ।

मां दृष्ट्वा त उपव्रज्य कृत्वा पादाभिवन्दनम् ।
ब्रह्माणमग्रतः कृत्वा पप्रच्छुः कोभवानिति॥३७॥

श्रीमद्भागवत में श्रीभगवान् का वचन है कि सनकादिकों ने हमें देख, हमारे समीप आ, हमारे चरणारविन्द की वन्दना कर और ब्रह्मा को आगे करके "को भवान्" अर्थात् "आप कौन हैं" ऐसा प्रश्न किया ॥ ३७ ॥

इत्यहं मुनिभिपृष्टस्तत्त्वजिज्ञासुभिस्तदा ।
यदवोचमहं तेभ्यस्तदुद्धव निबोध मे ॥ ३८ ॥

श्रीभगवान् कहते हैं कि हे उद्धव, जब तत्त्व-जिज्ञासु मुनियों ने हमसे इस प्रकार पूछा, कि, "आप कौन हैं ?" तब हमने उनके इस प्रश्न का जो कुछ उत्तर दिया, उसे तुम सुनो ॥ ३८ ॥

वस्तुनो यद्यनानात्वमात्मनः प्रश्न ईदृशः ॥
कथं घटेत वो विप्रा वक्तुर्वा मे क आश्रयः ॥३९॥

श्रीभगवान् कहते हैं कि हमने सनकादिकों से कहा कि हे ब्राह्मणो ! तुम्हारा आत्मसम्बन्धी ऐसा, अर्थात् बहुतों के मध्य में एक को निर्धारण करने-वाला—"को भवान्"—अर्थात् "आप कौन है ?"—यह प्रश्न कैसे सम्भव होसकता है ? और फिर हम ही किस आश्रय से उत्तर देसकते हैं ? ॥ ३८ ॥

पञ्चात्मकेषु भूतेषु समानेषु च वस्तुतः ।
को भवानिति वः प्रश्नो वाचारम्भो ह्यनर्थकः ४०

यदि तुम्हारा यह प्रश्न प्राकृतिक देहविषयक हो, तब तो यह प्रश्न वाग्जालमात्र ही है, क्योंकि भौतिक सभी देह समान ही हैं, ॥ ४० ॥

मनसा वचसा दृष्ट्या गृह्यतेऽन्यैरपीन्द्रियैः ।
अहमेव न मत्तोन्यदिति बुध्यध्वमञ्जसा ॥ ४१ ॥

अतएव मन से, वाणी से, दृष्टि से, तथा अन्य इन्द्रियों से भी जो ग्रहण किया जाता है, वह हम से पृथक् कुछ नहीं है, यह तुम भलीभांति जानो ४१

गुणेष्वाविशते चेतो गुणाश्चेतसि च प्रजाः ।
जीवस्य देह उभयं गुणाश्चेतो मदात्मनः ॥४२॥

हे पुत्रो ! गुणों (विषयों) में चित्त प्रविष्ट होता रहता है और वे गुण चित्त में प्रविष्ट होते रहते हैं। ये दोनो (गुण और चित्त) हमारे अंश जीव के देह हैं ॥ ४२ ॥

गुणेषु चाविशच्चित्तमभीक्ष्णं गुणसेवया ।
गुणाश्च चित्तप्रभवा मद्रूप उभयं त्यजेत् ॥ ४३ ॥

गुण के सेवन करने से वारंवार चित्त गुणों में प्रविष्ट होता रहता है। योंही चित्त से जायमान वे गुण भी चित्त में प्रविष्ट होते रहते हैं। सो यद्यपि ये दोनो परस्पर ग्रथित होरहे हैं, तथापि यह जीव हमारा अंश है, यह जानकर और हमारे रूप में मन लगाकर उनदोनों (गुण और चित्त) को छोड़े ॥ ४३ ॥

जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तं च गुणतो बुद्धिवृत्तयः ।
तासां विलक्षणो जीवः साक्षित्वेन विनिश्चितः ४४

जाग्रत्, स्वप्न, और सुषुप्ति, ये तीनों वृत्तियां जीव के सत्त्व, रज, और तम—इन तीनों गुणों से होती हैं; ये तीनों अवस्थाएं बुद्धि की वृत्तियां हैं,—अर्थात् ये आप ही होती रहती हैं; किन्तु जीव इन वृत्तियों का साक्षी और द्रष्टा है, अतएव जीव इन वृत्तियों से भिन्न है ॥ ४४ ॥

मयैतदुक्तं वो विप्रा गुह्यं यत्सांख्ययोगयोः ।
जानीत मागतं यज्ञं युष्मद्धर्मविवक्षया ॥ ४५ ॥

हेविप्रो ! सांख्य और योग में जो गुह्य तत्त्व कहा है, उसे हमने तुमसे कहा । तुम हमको साक्षात् यज्ञ (परमात्मा) जानो । हम तुम्हें धर्मोपदेश देने के लिए आए हैं ॥ ४५ ॥

इति तानुपदिश्याथ प्रार्थितः सनकादिभिः ।
ज्ञानं भक्तिरहस्यं च विज्ञानं शरणागतिम् ॥ ४६ ॥
अष्टादशाक्षरं तेभ्य उपदिश्य स्वयं प्रभुः ।
ब्रह्मणा सत्कृतः प्रीत्या तत्रैवांतरधीयत ॥ ४७ ॥

श्रीसनकादिकों की प्रार्थना से उन्हें धर्मोपदेश देकर तथा ज्ञान, भक्ति के रहस्य, विज्ञान और शरणागति को देकर श्रीप्रभूजी ने स्वयं उन सनकादिकों को अष्टादशाक्षर श्रीगोपालमन्त्र का उपदेश किया । तदनन्तर ब्रह्मा से पूजित होकर हंस भगवान् वहीं अन्तर्धान होगए ॥ ४६ ॥ ४७ ॥

श्रीनकादिसिद्धानां गुरुः कृष्णो गतिप्रदः ।
कृष्णो भक्तकृपाकारी संप्रदायप्रवर्त्तकः ॥४८॥

श्रीसनकादिसिद्धों के गुरु सद्गति के देनेवाले श्रीकृष्ण ही हैं। ये श्रीकृष्ण भक्तों पर कृपा करनेवाले और सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक हैं ॥ ४८ ॥

मन्त्रोपदेशप्रमाणमाह ऊर्द्ध्वाम्नायतन्त्रे शिवेनोक्तम् ।

नारायणमुखाम्भोजान्मन्त्रस्त्वष्टादशाक्षरः ।
आविर्भूतः कुमारैस्तु गृहीत्वा नारदाय च॥४९॥
उपदिष्टः स्वशिष्याय निम्बार्काय च तेन तु।
एवं परम्पराप्राप्तो मन्त्रस्त्वष्टादशाक्षरः ॥ ५० ॥
विष्णुयामलवाक्येन श्रीमन्तः सनकादयः ।
ज्ञानविज्ञानसम्पन्ना हंसशिष्याः प्रकीर्त्तिताः ५१
इत्यूर्द्ध्वाम्नायतन्त्रे च समाम्नातं पिनाकिना ।
लोकानुग्रहकामेन भक्तराजेन धीमता ॥ ५२ ॥

मन्त्रोपदेश का प्रमाण कहते हैं। ऊर्द्ध्वाम्नाय-तन्त्र में श्रीशिवजी ने पार्वती से कहा है,-श्रीनारायण के मुखकमल से अष्टादशाक्षर मन्त्रराज प्रकट हुए, जिन्हें श्रीहंसभगवान् से चारो सनकादिकों ने ग्रहण करके श्रीनारदजी को दिया; और श्रीनारदभगवान् ने स्वशिष्य श्रीनिम्बार्काचार्य को उपदेश किया। इसी प्रकार यह अष्टादशाक्षर मन्त्र परम्परा से प्राप्त हुआ। विष्णुयामल के वाक्य से श्रीसनकादिमुनीश्वर

ज्ञानविज्ञान से युक्त थे और श्रीहंसभगवान् के शिष्य थे। इस प्रकार ऊर्द्धाम्नायतन्त्र में लोगों पर अनुग्रह करके भक्तराज धीमान् श्रीशिवजी ने कहा है ॥ ४८ ॥ ५० ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

ततः श्रीनारदावतारप्रमाणमाह

स्वापन्नार्त्तिविनाशाय तत्त्वसंरक्षणाय च ।
वैष्णव्या कलयोद्भूतो नारदो मुनिसत्तमः ५३

तदनन्तर श्रीनारदावतार का प्रमाण कहते हैं,- निज शरणागत जन की पीड़ा के दूर करने के लिये तथा तत्त्वों की रक्षा के लिये श्रीविष्णुभगवान् के अंश से मुनिवर्य श्रीनारदजी प्रकट हुए ॥ ५३ ॥

उत्सङ्गान्नारदो जज्ञे ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ।
मार्गशुक्ले शुभर्क्षे च द्वादश्यां शुभवासरे ॥५४॥

श्रीब्रह्माजी के उत्सङ्ग से श्रीनारदजी अग्रहण शुक्ला द्वादशी के दिन शुभ नक्षत्र और शुभ वासर में प्रकट हुए ॥ ५४ ॥

श्रीमद्भागवते ।

तृतीयमृषिसर्गं वै देवर्षित्वमुपेत्य सः ।
तंत्रं सात्वतमाचष्टे नैष्कर्म्यं कर्मणां यतः ॥५५॥

श्रीमद्भागवत में कहा है कि तृतीय ऋषिसर्ग में श्रीभगवान् ने देवर्षि श्रीनारदजी का अवतार धारण कर भागवतधर्म का प्रचार किया, जिससे कर्मों की निष्कामता होती है ॥ ५५ ॥

कमलजसुतमीशं प्रोल्लसत्पद्मवक्त्रं,
सुललितकचजूटं स्वर्णयज्ञोपवीतम् ।
अजिनवसनधानं नारदं ब्रह्मरूपं,
जलनिधिसुतकान्तं कृष्णदासं नमामि ॥५६॥

श्रीब्रह्मा के पुत्र, सुन्दरमुखारविन्द, ललित केशों का जूड़ा बांधे हुए, पीतयज्ञोपवीतधारी, मृगचर्म धारण किए, चन्द्रकान्त, ब्रह्मरूप, कृष्णदास, श्रीनारदजी को हम प्रणाम करते हैं ॥ ५६ ॥

उपदेशमकुर्वंस्ते नारदं मुनिसत्तमाः ।
कुमारसंहितायां वै कुमारा हरयो हरिम् ॥ ५७ ॥

श्रीसनत्कुमारसंहिता में लिखा है कि श्रीहरि के रूप सनकादिकों ने श्रीभगवान् के रूप श्रीनारदजी को भागवतधर्म का उपदेश किया ॥ ५७ ॥

सनत्कुमारं योगीन्द्रं सिद्धाश्रमनिवासिनम् ।
ब्रह्मनिष्ठं मुनिं शांतमुदयादित्यवर्चसम् ॥ ५८ ॥
विनयेनोपसंगम्य शिरसा प्रणिपत्य च ।
नारदः परिपप्रच्छ ब्रह्मर्षिं सर्वकालवित् ॥ ५९॥

योगीन्द्र, सिद्धाश्रमनिवासी, ब्रह्मनिष्ठ, उदयकाल के सूर्य के समान तेजस्वी, शांत, मुनि श्रीसनत्कुमारजी के शरण में विनयपूर्वक प्राप्त होकर और सिर झुका कर दण्डवत् प्रणाम करके सर्वकालवित् श्रीनारदजी ने यों पूछा ॥ ५८ ॥ ५९ ॥

भगवन्योगिनां श्रेष्ठ भवसागरतारक ।
श्रुतानि सर्वशास्त्राणि मया त्वत्तोविशेषतः ६०

हे भगवन्' हे योगियों में श्रेष्ठ, हे भवसागर से तारनेवाले, हमने आपसे सब शास्त्र विशेषरूप से सुने ॥ ६० ॥

अपरोक्षमिदं जातं जगद्‌ ब्रह्मपरं तथा ।
इदानीं श्रोतुमिच्छामि मंत्रं सर्वोत्तमोत्तमम् ६१

जिनसे यह ब्रह्मपरक जगत् हमें प्रत्यक्ष होगया है । अब हम आपसे परमोत्तम मन्त्र को श्रवण किया चाहते हैं ॥ ६१ ॥

इति संप्रार्थितस्तेन नारदेन च धीमता ।
सनत्कुमारो भगवानवोचन्नारदं प्रति ॥ ६२ ॥

इस प्रकार धीमान् श्रीनारदजी की प्रार्थना सुनकर भगवान् श्रीसनत्कुमारजी ने उनसे कहा ॥ ६२

साधु पृष्टं त्वया ब्रह्मन्सर्वभूतहितैषिणा ।
श्रीमद्धंसमुखांभोजाच्छ्रुतं यत्तद्वदामि ते ॥ ६३ ॥

हे ब्रह्मन्, सब प्राणियों के हित चाहनेवाले तुमने अच्छा प्रश्न किया । हमने श्रीहंसभगवान् के मुख से जो मंत्र सुना है, वह तुमसे कहते हैं ॥ ६३ ॥

गोपालविषया मंत्रास्त्रयस्त्रिंशत्प्रभेदतः ।
तेषु सर्वेषु मंत्रेषु मंत्रराजमिमं शृणु ॥ ६४ ॥

श्रीगोपालजी के विषय के मंत्रों के तेंतीस भेद हैं। उन सब मंत्रों में इस मंत्रराज को तुम सुनो ॥ ६४ ॥

अष्टादशाक्षरं मंत्रं दुर्लभं भुवनत्रये ।
समाहितमना भूत्वा शृणु वक्ष्यामि नारद ॥६५॥

हे नारद, तुम एकाग्रचित होकर सुनो । त्रैलोक्य में दुर्लभ अष्टादशाक्षर मन्त्र को हम कहते हैं ॥६५॥

तथा संमोहनतंत्रे पार्वतीहरसंवादे ।

अष्टादशाक्षरो मन्त्रो व्यापको लोकपावनः ।
सप्तकोटिमहामन्त्रशेखरो देवशेखरः ॥ ६६ ॥

यही बात सम्मोहनतन्त्र में श्रीमहादेव और पार्वती के संवाद में कही है । यथा,—सप्तकोटि महामन्त्र का मस्तकरूप, देवशेखर, लोकपावन, और व्यापक यह अष्टादशाक्षर मन्त्र है ॥ ६६ ॥

अमुं पञ्चपदं मनुमावर्त्तयेद्यः सयात्यनायासतः
केवलं तत्पदं तदितिगोपालतापिनीश्रुतेः ॥६७॥

जो कोई इन पांच पदों के मन्त्र को वारंवार कहते हैं, वे अनायास ही साक्षात् मोक्षपद को प्राप्त करते हैं, ऐसा गोपालतापिनी श्रुति में कहा है ॥६७॥

ऊर्द्धाम्नायतन्त्रे च ।

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि रहस्यं परमं महत्।
कृष्णमङ्गलमूर्तिश्च मन्त्रस्त्वष्टादशाक्षरः ॥६८॥

ऊर्द्धाम्नायतन्त्र में श्रीशिवजी ने श्रीपार्वतीजी से कहा है कि,-हे देवि ! तुम इस महान् रहस्य को सुनो, हम कहते हैं,-अष्टादशाक्षर महामन्त्र साक्षात् मङ्गलमूर्त्ति श्रीकृष्ण का स्वरूप ही है ॥६८॥

कृष्णशत्कोटिमन्त्राणां मन्त्रशक्तिप्रदायकः।
कृष्णशत्कोटिमन्त्राणां शेखरोऽष्टादशाक्षरः ६९

यह अष्टादशाक्षर महामन्त्र श्रीकृष्ण के शत-कोटि मन्त्रों का मस्तक है और श्रीकृष्ण के शत-कोटि मन्त्रों को शक्ति देनेवाला है ॥ ६९ ॥

तं कृष्णस्य महाभागे मन्त्रराजेश्वरेश्वरम्।
अष्टादशाक्षरं मन्त्रं जपामि ध्यानमध्यगः ७०

अतः हे महाभागे! श्रीकृष्ण के उस मन्त्र-राजेश्वरेश्वर अष्टादशाक्षर श्रीगोपालमन्त्र का जप हम ध्यान में किया करते हैं ॥ ७० ॥

श्रीमद्गोपालमंत्रस्य युक्तस्याष्टादशाक्षरैः।
मंत्रराजत्वविख्यातिः सर्वशास्त्रेषु सम्मता: ७१

अष्टादशाक्षरों से युक्त श्रीगोपालमन्त्र के मन्त्र-राजत्व की ख्याति सब शास्त्रों में कही है ॥ ७१ ॥

तथा श्रीमद्भागवते चतुर्थस्कंदे,
रुद्रः प्रचेतान् प्रति।

स्वधर्मनिष्ठः शतजन्मभिः पुमान्
विरञ्चितामेति ततः परं हि मां।
अव्याकृतं भागवतोऽथ वैष्णवम्
पदं यथाहं विबुधाकलात्यये ॥ ७२ ॥

तथा श्रीमद्भागवत के चतुर्थस्कन्ध में श्रीमहा-देवजी ने दश प्रचेतों से कहा है कि,—स्वधर्मनिष्ठ मनुष्य सैकड़ों जन्मों के अनन्तर ब्राह्मपद को प्राप्त

करता है; तदनन्तर हमको पाता है; इसके पश्चात् वह भगवद्भक्त अविकृत वैष्णवपद को प्राप्त करता है, जिस पद को कि हम देवकला त्यागने के पश्चात् पाते हैं ॥ ७२ ॥

इत्यादिश्योपदिश्याथ ब्रह्मविद्यां सनातनीम् ।
भूमविद्यामात्मविद्यां कृतकृत्यं चकार ह ॥७३॥

इस प्रकार कहकर और सनातनी ब्रह्मविद्या, भूमविद्या और आत्मविद्या का उपदेश देकर श्रीसनत्कुमारजी ने श्रीनारदजी को कृतकृत्य कर दिया ॥७३॥

श्रुत्वा तस्य मुखाम्भोजाद्विद्यामानन्ददायिनीम्
ततः प्रोवाच भगवान्नारदो मुनिसत्तमः ॥ ७४ ॥

श्रीसनत्कुमारजी के मुखकमल से आनन्द-दायिनी विद्या को सुनकर फिर मुनिसत्तम भगवान् श्रीनारदजी यों बोले ॥ ७४ ॥

धन्योस्म्यऽनुग्रहीतोऽस्मि भवद्भिः करुणात्मभिः
कृपया मे समादिष्टो मंत्रमूर्तिः स्वयं हरिः ॥७५॥

हम धन्य हुए, करुणावान् आपने हमें अनुग्रहीत किया; इसलिये कि आपने कृपाकर मन्त्रमूर्त्ति स्वयं श्रीहरि का हमें उपदेश किया ॥ ७५ ॥

इत्युक्त्वा प्रणिपत्याथ दंडवत्तत्पदाम्बुजे ।
ब्रह्मलोकं स भगवान्नारदः प्रययौ मुनिः ॥७६॥

इस प्रकार कह और श्रीसनत्कुमारजी के चरणारविन्दों में दण्डवत्प्रणाम कर वे भगवान् श्रीनारद मुनि ब्रह्मलोक को गए ॥ ७६ ॥

इत्याद्युक्तप्रकारेण नारदो मुनिसत्तमः ।
श्रीमत्कुमारशिष्यो वै प्रमाणेभ्यो निरूपित: ७७

इत्यादि प्रकारों तथा प्रमाणों से यह निरूपण किया गया कि मुनिसत्तम श्रीनारदजी श्रीसनत्कुमार जी के शिष्य हुए थे ॥ ७७ ॥

इत्याचार्यचरित्रस्य पूर्वविश्राम ईरितः ।
यत्राचार्यत्रयाणां चावतारस्त्वं प्रकीर्त्तितम् ॥७८॥

इस प्रकार आचार्यचरित का प्रथम विश्राम कहा गया, जिसमें तीनों आचार्यों (श्रीहंस, श्रीसनकादिक और श्रीनारद) के अवतार धारण करने का प्रसङ्ग कहा गया ॥ ७८ ॥

इतिश्रीमदाचार्यचरितस्य प्रथमो
विश्रामः समाप्तः ॥ १ ॥

॥ ७८ ॥

श्रीः

अथाचार्यत्रयाणां च वक्ष्ये स्तोत्रत्रयीं शुभा ।
पापापहारिणी दिव्या भुक्तिमुक्तिप्रदायिनी॥१॥

अब तीनों आचार्यों (श्रीहंस, श्रीसनकादिक और श्रीनारदजी) के कल्याणकारक, पापापहारक, दिव्य और भुक्ति-मुक्ति-प्रदायक स्तोत्रों को कहते हैं॥१॥

अथसम्प्रदायप्रवर्त्तक-श्रीहंसप्रणिपत्तिस्तोत्रम् ।

हंसस्वरूपं रुचिरं विधाय,
य: सम्प्रदायस्य प्रवर्त्तनार्थम् ॥
स्वतत्त्वमाख्यात्सनकादिकेभ्यो,
नारायणं तं शरणं प्रपद्ये ॥ १ ॥

जिन्होंने रमणीय 'हंस'-स्वरूप धारण करके 'सम्प्रदाय' प्रचलित करने के लिए चतुःसनकादिकों से निज 'तत्त्व' को कहा, उन श्रीनारायण के शरण में हम प्राप्त होते हैं ॥ १ ॥

यदीयपादाम्बुजभृङ्गभावं,
जनो दधानो जगतीतलेऽस्मिन् ॥
स्वर्गापवर्गौ मनुतेऽतितुच्छौ,
श्रियः पतिं तं शरणं प्रपद्ये ॥ २ ॥

जिनके चरणारबिन्द के मधुकर-भाव को प्राप्त होकर मनुष्य इस संसार में स्वर्ग और अपवर्ग (मोक्ष)

को तुच्छ समझने लगता है, उन श्रीपति के शरण में हम प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

कारुण्यपीयूषसरित्पतित्वं,
स्वकीयभक्तेषु सदा दधानम् ॥
मनोज्ञलीलं कमनीयशीलं,
श्रिया निकेतं शरणं प्रपद्ये ॥ ३ ॥

निज भक्तों पर सदा कारुण्यरूपिणी सुधानदी के स्वामित्व के भाव को धारण करनेवाले, अर्थात् निज भक्तों के लिए करुणासागर, मनोहर लीला करनेवाले और वाञ्छनीय स्वभाववाले श्रीनिवास के शरण में हम प्राप्त होते हैं ॥ ३ ॥

सतां परित्राण-परायणो यः,
करोति नानाविध-मर्त्यलीलाम् ॥
स्वधर्म-संस्थापन-सक्तचित्तं,
तं देवदेवं शरणं प्रपद्ये ॥ ४ ॥

सज्जनों की रक्षा में तत्पर होकर जो नाना प्रकार की मनुष्यलीलाएं करते हैं, उन स्वधर्म-संस्थापन में आसक्त-चित्त, देवाधिदेव के शरण में हम प्राप्त होते हैं ॥ ४ ॥

न धर्मनिष्ठां दधदस्मि नात्म-
विज्ञानवानस्मि न भक्तिमांश्च ॥

अतीव दीनो भगवन् ! सदाऽहं,
त्वां दीनबन्धुं शरणं प्रपद्ये ॥ ५ ॥

हे भगवन् ! हम न तो धर्म में निष्ठा रखते हैं, न हममें आत्मज्ञान ही है और न हम भक्तियुक्त ही हैं; हम सदा से अत्यन्त दीन हैं, (इस लिये) आपको दीनबन्धु जानकर शरणागत होते हैं ॥५॥

तरङ्गभागस्मि सताञ्च सङ्गे,
गाङ्गेयवर्णाम्बर ! 'ते प्रसङ्गे ॥
मनो न लग्नं' मम देहभङ्गे,
कीदृग्गतिः स्याद्धृद तां न जाने ॥६॥

हे शुक्लाम्बर ! सत्सङ्ग के समय तो हम अत्यन्त चञ्चल होते रहते हैं और आपकी कथा के प्रसङ्ग में हमारा मन नहीं लगता; तब बताइये,–देहपात होने पर हमारी क्या गति होगी, यह हम नहीं जानते ॥ ६ ॥

लोकत्रये यान्यसदीहितानि,
तान्येव सर्वाणि मया कृतानि ॥
तदीयपाकावसरं विसोढु-
मशक्नुवन् देवमुपैमि नाथ ! ॥ ७ ॥

हे नाथ ! त्रैलोक्य में जितने कुत्सित कर्म हैं, वे सभी हमारे किए हुए हैं, किन्तु उन कुकर्मों के फल भोगने के अवसर को सहन करने में असमर्थ

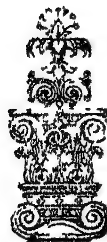
होकर हे देव ! हम दीन भाव से आप के शरण में आए हैं ॥ ७ ॥

वशीकृतिं यान्ति न हीन्द्रियाणि,
बुद्धिर्न शुद्धिं समुपैति तस्मात् ॥
न साधनं मेऽस्ति तव प्रसादे,
दयालुभावेन विना हरे ! ते ॥ ८ ॥

इति श्रीहंसप्रणिपत्तिस्तोत्रं समाप्तम् ॥

हे हरे ! इन्द्रियगण हमारे वश में नहीं आते, अतः हमारी बुद्धि भी शुद्धा नहीं होती; इस लिये अब आपकी दयालुता के विना हमारे पास ऐसा कोई साधन नहीं है, जिससे हम आपको प्रसन्न कर सकें ॥ ८ ॥

इतिश्रीहंसप्रणिपत्तिस्तोत्र की भाषाटीका समाप्त हुई ।



श्रीः

अथसम्प्रदायप्रवर्त्तक-श्रीसनकादि-प्रणिपत्तिस्तोत्रम् ॥

कुमारभावेन विधाय वेषं,
यो ब्रह्मचर्यं सुदृढं व्यधत्त ॥
परिस्फुरद्गारिममण्डिताङ्गं,
नमाम्यहं श्रीसनकादिकं तम् ॥ १ ॥

कौमारवेश धारण करके जिन्होंने अखण्ड ब्रह्मचर्यव्रत को धारण किया, उन गरिमामण्डित सनकादिकों को हम प्रणाम करते हैं ॥ १ ॥

यदग्रतः श्रीभगवान् रमेशो,
हंसस्वरूपं कुतुकेन कृत्वा ॥
तत्त्वं स्वकीयं विवृतं व्यतानी-
न्नमाम्यहं श्रीसनकादिकं तम् ॥ २ ॥

जिनके सन्मुख श्रीरमापति भगवान् ने कौतुक से हंसरूप धारण करके प्रकट होकर निज (परमात्म) तत्त्व को विशदरूप से कहा, उन सनकादिकों को हम प्रणाम करते हैं ॥ २ ॥

यदीयपादाब्जयुगं स्मरन्तो,
जना लभन्ते हरिभक्तिमुग्राम् ॥

वशीकृतत्वं दधतो मुरारेः,
नमाम्यहं श्रीसनकादिकं तम् ॥ ३॥

जिनके युगल चरणारविन्दों का स्मरण करके मनुष्य परमोत्तम हरिभक्ति को प्राप्त करते हैं, और जिन्होंने श्रीभगवान् को अपने वश में कर लिया है, उन श्रीसनकादिकों को हम प्रणाम करते हैं ॥ ३ ॥

यः श्रीलनिम्बार्कमवेक्ष्य लोका-
तीतप्रभावान्वितभावभाजम् ॥
प्रवर्त्तयामास च तेन रम्यं,
श्रीकृष्णसेव्यं निजसम्प्रदायम् ॥ ४ ॥

जिन्होंने, लोकातीतप्रभाव से युक्त श्रीनिम्बार्क भगवान् को जानकर उन (श्रीनिम्बार्क) के द्वारा श्रीकृष्णसेव्य और रमणीय निज सम्प्रदाय का प्रचार कराया ॥ ४ ॥

श्रीमाँश्च निम्बार्कसमीडितो यो,
लीलावतारः पुरुषोत्तमस्य ॥
तं भक्तिविज्ञानविधानताढ्यं,
दयासमुद्रं सनकादिमीडे ॥ ५ ॥

और जो श्रीमान् (सनकादिक) श्रीनिम्बार्काचार्य के द्वारा स्तुत हुए, तथा जो पुरुषोत्तम भगवान् के लीलावतार हैं, उन भक्ति और विज्ञान के

विधानों से युक्त तथा दया के समुद्र श्रीसनकादिकों की हम स्तुति करते हैं ॥ ५ ॥

महानुभावाश्रितपादपद्मो,
मनोवचोऽतीतगुणाभिरामः ॥
गोपालमन्त्राश्रितसम्प्रदायो,
मयि प्रसन्नः सनकादिरस्तु ॥ ६ ॥

महानुभावों ने जिनके चरणारविन्दों का आश्रय लिया है, जो मन और वाणी के अतीतगुणों से शोभित हैं, और जिनका सम्प्रदाय श्रीगोपाल-मन्त्र के आधार पर है, वे श्रीसनकादिक हम पर प्रसन्न हों ॥ ६ ॥

यत्कोपलेशादवशत्वमेत्य,
जयेन साकं विजयश्च्युतोऽभूत् ॥
वैकुण्ठतः श्रीभगवत्समीपात्,
प्रभाविनं तं सनकादिमीडे ॥ ७ ॥

जिनके कोप के कारण श्रीभगवान् के समीप रहने पर भी निरुपाय होकर जय के साथ विजय वैकुण्ठ से नीचे गिरे, उन महाप्रभाववान् श्रीसनकादिकों की हम स्तुति करते हैं ॥ ७ ॥

यदीयपादाब्जयुगाश्रयेण,
भक्तिर्वरिष्ठत्ववती विशुद्धा ॥

उदञ्चती श्रीभगवत्यजस्रं,
नमाम्यहं श्रीसनकादिकं तम् ॥८॥

इतिश्रीसनकादिप्रणिपत्तिस्तोत्रं समाप्तम् ॥

जिनके युगल चरणारविन्दों का आश्रय लेने से श्रीभगवान् में शुद्ध और परमश्रेष्ठ भक्ति का निरन्तर उदय होता है, उन श्रीसनकादिकों को हम प्रणाम करते हैं ॥ ८ ॥

इतिश्रीसनकादिप्रणिपत्तिस्तोत्र की
भाषाटीका समाप्त हुई ॥

श्रीः

अथसम्प्रदायप्रवर्त्तक-श्रीनारद-

प्रणिपत्तिस्तोत्रम् ॥

य: सर्वलोकस्य हितं विधातुं,
समुद्बदव्याजदयातिरेकात् ॥
सत्पञ्चरात्रागमकृद्ब बभूव,
श्रीनारदं तं शरणं व्रजामि ॥ १ ॥

जो निश्छलदया के आधिक्य से सब लोगों के कल्याण करने के लिये प्रकट हुए, और जिन्होंने सत् पञ्चरात्र आगम की रचना की, उन श्रीनारदजी के शरण में हम प्राप्त होते हैं ॥ १ ॥

यो व्यासदेवं परमं विषादं,
चेतःप्रसादानुदयाद्व्रजन्तम् ॥
अचीकरद्भागवताख्यशास्त्रं,
श्रीनारदं तं शरणं व्रजामि ॥ २ ॥

जिन्होंने परमविषादग्रस्त वेदव्यास के चित्त को प्रसन्नकर उन (व्यास) के द्वारा श्रीमद्भागवत शास्त्र की रचना कराई, उन श्रीनारदजी के शरण में हम प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

यो देवदत्तां रुचिरां विपञ्ची-
मादाय गायन् मधुरासुधायाः ॥

कीर्त्तिं हरेर्मोदयति त्रिलोकीं,
श्रीनारदं तं शरणं व्रजामि ॥ ३ ॥

जो देवदत्त रमणीय वीणा को ले, और उसे बजाकर सुधा मधुर श्रीहरि के यश का गान करते हुए त्रैलोक्य को आनन्दित करते रहते हैं, उन श्रीनारदजी के शरण में हम प्राप्त होते हैं ॥ ३ ॥

सुधाकरस्वच्छतनुत्वभाजं,
स्वर्णोपवीतत्वमुपैति वासं ॥
प्रवर्त्तयन्तं हरिभक्तियोगं,
श्रीनारदं तं शरणं व्रजामि ॥ ४ ॥

जो चन्द्रवत् कान्तियुक्त, स्वर्णयज्ञोपवीत और पीताम्बरधारी और हरिभक्ति के प्रवर्त्तक हैं, उन श्रीनारदजी के शरण में हम प्राप्त होते हैं ॥४॥

गायन् मुकुन्दस्य यशोऽमलं यः,
सदा त्रिलोकीमटति प्रसन्नः ॥
उदारभावो विदितप्रभावः,
श्रीनारदं तं शरणं व्रजामि ॥ ५ ॥

जो श्रीभगवान् के अमल यश का गान करते हुए त्रैलोक्य में भ्रमण किया करते हैं, उन उदारभाव और विदितप्रभाव श्रीनारदजी के शरण में हम प्राप्त होते हैं ॥ ५ ॥

यद्देवकार्येषु परानुरक्ति-,
स्तस्मात्प्रजल्पन्त्यसुराः सदैव ॥
"श्रीनारदोऽयं कलहप्रियो वै,"
श्रीनारदं तं शरणं व्रजामि ॥६॥

श्रीनारदजी सदा देवकार्य में तत्पर रहा करते हैं, इस लिये कुढ़कर असुरलोग उन (श्रीनारदजी) को "कलहप्रिय" कहा करते हैं, उन श्रीनारदजी के शरण में हम प्राप्त होते हैं ॥ ६ ॥ (+)

श्रीभक्तिसूत्रार्णवपारदृश्वा,
देवर्षिवर्योऽतुलितप्रभावः ॥
हरिप्रियो व्यासगुरुर्गरिष्ठः,
श्रीनारदं तं शरणं व्रजामि ॥ ७ ॥

श्रीभक्तिसूत्र के समुद्र के पार जाने-वाले, देवर्षिवर्य, अतुलप्रभाव, हरिप्रिय, श्रीवेदव्यासजी के श्रेष्ठ गुरु, श्रीनारदजी के शरण में हम प्राप्त होते हैं ॥ ७ ॥

(+) यही बात पुराणान्तरों में भी कही है; यथा,—
"देवर्षिर्नारदः प्रोक्तो देवकार्ये सदा रतः ।
तस्माद्देवासुरैः प्रोक्तं 'नारदः कलहप्रियः' ॥"

श्रीमन्त्रराजस्य विशारदोऽयं,
तद्भाष्यकारोऽमलकीर्त्तिगाथः ॥
जगद्गुरुः श्रीहरिदासवर्यः,
श्रीनारदं तं शरणं व्रजामि ॥ ८॥

इतिश्रीनारदप्रणिपत्तिस्तोत्रं समाप्तम् ॥

श्रीमन्त्रराज (श्रीगोपालमन्त्र)के पूर्णज्ञाता और उस (मन्त्रराज) पर भाष्य रचने-वाले, निर्मल-चरित्र, जगद्गुरु, श्रीहरिदासवर्य, श्रीनारदजी के शरण में हम प्राप्त होते हैं ॥ ८ ॥

इतिश्रीनारदप्रणिपत्तिस्तोत्र की
भाषाटीका समाप्त हुई ।

इत्याचार्यचरित्रस्य विश्रामस्तु द्वितीयकः ।
यत्राचार्यत्रयाणां च प्रोक्ता स्तोत्रत्रयी शुभा १

इस प्रकार श्रीआचार्यचरित का दूसरा विश्राम समाप्त हुआ, जिसमें तीन आचार्यों के तीन स्तोत्र कहे गए ॥१॥

भुक्तिमुक्तिप्रदा नित्यं महाक्लेशविनाशिनी ।
पठनाच्छ्रवणात्सद्यो हरिभक्तिविधायिनी॥२॥

ये तीनो स्तोत्र पढ़ने और सुनने से तुरन्त महाक्लेशों का विनाश करते, भुक्ति-मुक्ति को देते, और हरिभक्ति को प्रदान करते हैं ॥२॥

इतिश्रीमदाचार्यचरितस्य द्वितीयो
विश्रामः समाप्त ॥२॥

॥ १०५ ॥

श्रीश्रीकृष्णाय नमः।

हविर्द्धानाभिधं रत्नमनिरुद्धं सुदर्शनम्।
जयन्तिशुक्तिसंभूतं श्रीनिम्बार्कमहं भजे ॥१॥

श्रीसुदर्शनजी को श्रीअनिरुद्धजी ही जानो। ये हविर्धान-नाम के रत्न हैं और इनकी उत्पत्ति जयन्ती-नाम्नी शुक्ति से हुई है (१) ये ही श्रीनिम्बार्कभगवान् हैं, इनका हम भजन करते हैं ॥१॥

अनिरुद्धस्य सुदर्शनत्वं यथा नारदपञ्चरात्रे,-
शङ्खः साक्षाद्वासुदेवो गदा सङ्कर्षणः स्वयम्।
बभूव पद्मं प्रद्युम्नोऽनिरुद्धस्तु सुदर्शनः ॥ २ ॥

श्रीअनिरुद्धजी श्रीसुदर्शनजी ही हैं, यह बात श्रीनारदपञ्चरात्र में लिखी है; यथा,-साक्षात् श्रीवासुदेव शंख हैं, श्रीसङ्कर्षण गदा हैं, श्रीप्रद्युम्न पद्म हैं और श्रीअनिरुद्ध सुदर्शन हैं ॥२॥

सुदर्शनस्य हविर्द्धानाभिधत्वं नैमिषखण्डे,---
कल्पत्रयादपि प्राक् च विष्णुक्षेत्रे द्विजा हरिम्।
त्रेतायुगे गतप्रायेऽयजंताऽसुरकुण्ठिताः ॥ ३ ॥

श्रीसुदर्शन का ही नाम हविर्धान है, यह बात नैमिषखण्ड में भी कही है; यथा,-श्रीश्वेतवाराह-कल्प के तीन कल्प पूर्व त्रेता युग के अन्त में, असुरों से भयभीत होकर ब्राह्मण लोग श्रीविष्णुक्षेत्र अर्थात् माथुर-मण्डल में श्रीहरि का यजन करते थे ॥३॥

(१) यहां पर 'रत्न' और 'शुक्ति' से रूपकालङ्कार दरसाया है।

मेरोर्मूर्द्धन्यपर्य्यन्ते ब्रह्माणं शरणं ययुः।
तेन ध्यातो हरिश्चक्रमर्पयन्मुनिरक्षणे ॥ ४ ॥

फिर वे ब्राह्मण लोग असुरों से सताए जानेपर सुमेरु पर्वत के शिखर पर स्थित ब्रह्मलोक में ब्रह्मा के शरण में गए। तदनन्तर जब ब्रह्मा ने श्रीहरिभगवान् का ध्यान किया, तब भगवान ने मुनियों की रक्षा के लिये अपनो सुदर्शन चक्र दिया ॥४॥

तदाविरासीत्स्वांतस्थं मुनिरूपं दधार तत्।
हविर्द्धानेति विख्यातो नियमानन्द इत्यपि ५

तब वे श्रीसुदर्शन-भगवान् मुनिरूप धारण करके प्रकट हुए। उस समय उन मुनिवर्य का नाम 'हविर्धान तथा नियमानन्द हुआ ॥ ५ ॥

हवींषि धारयन् पुष्णन् हविर्द्धान इतीर्य्यते।
वेदानानन्दयद्यस्मान्नियमानंद ईर्य्यते ॥ ६ ॥

"हविष" के धारण और पोपण करने से वे हविर्धान कहाए, और वेदों को आनन्दित करने से नियमानन्द कहे गए ॥ ६ ॥

औदुम्बरसंहितायां च,-

गोवर्द्धनसमीपे तु निम्बग्रामे द्विजोत्तमाः।
जगन्नाथस्य पत्न्यां वै जयन्त्यां प्रथमे युगे ॥७॥
वैशाखे शुक्लपक्षे च तृतीयायां तिथौ पुनः।
साक्षात्सुदर्शनो लोके निम्बादित्यो बभूव ह ८

औदुम्बर संहिता में कहा है कि,—हे ब्राह्मणो!

निम्बग्राम में श्रीजगन्नाथशर्मा की पत्नी जयन्ती देवी से प्रथम युग, अर्थात् सत्ययुग में, वैशाखमास के शुक्लपक्ष की तृतीया (अक्षयतृतीया) को साक्षात् श्रीसुदर्शन श्रीनिम्बादित्य-रूप से प्रकट हुए ॥ ७ ॥ ८ ॥

त्रेतायामपि चक्रस्यावतारः सर्वविश्रुतः ।
माघस्य शुक्लपञ्चम्यां शुभवारान्वितेऽमले ॥९॥

त्रेतायुग में भी चक्रराज का अवतार सर्वत्र ख्यात है, जो माघमास के शुक्ल पक्ष की पञ्चमी तिथि को शुभ वासर में हुआ था ॥९॥

द्वापरेऽपि तथा जातोवतारस्तस्यधीमतः ।
कार्त्तिकस्य सिते पक्षे पौर्णिमायां शुभे दिने १०

उन श्रीमान् चक्रराज का अवतार द्वापर में भी कार्त्तिक शुक्ला पूर्णिमा के शुभ दिन में हुआ था ॥१०॥

कलावपि स्वभूदेवनाम्ना तस्य महात्मनः ।
अवतारोऽभवत्येव नरमुक्तिप्रदायकः ॥११॥

उन महानुभाव चक्रराज का अवतार श्रीस्वभूदेव के नाम से कलियुग में भी हुआ है, जो मनुष्यों को मुक्ति का देनेवाला है ॥११॥

एवं प्रतियुगं ज्ञेया व्यवस्था परमात्मनः ।
नानारूपधरस्यास्य धर्मरक्षणकाम्यया ॥१२॥

नाना प्रकार के रूप धारण करनेवाले श्रीभगवान् की यह अवतार धारण करनेवाली व्यवस्था धर्म की रक्षा के लिये प्रतियुग में जाननी चाहिए ॥१२॥

यदा यदा हि भगवानायातीह महीतले ।
तदा तस्य समायान्ति सायुधा पार्षदा अपि१३

जब जब श्रीभगवान् इस भूमण्डल में अवतार धारण करके पधारते हैं, तब तब उन श्रीभगवान् के दिव्य आयुध और पार्षद भी अवतार धारण करते हैं ॥१३॥

नैमिषखण्डे च,--

आम्नायरसमुद्धृत्य विप्रपालं सुदर्शनम् ।
स्वया भाषा गृहासन्नं ग्राहयामास नारदः ।।१४

नैमिषखण्ड में लिखा है कि,-ब्राह्मणों के प्रतिपालक तथा निज आश्रम में स्थित श्रीसुदर्शनजी को श्रीनारदजी ने स्वकीया भाषा से वेद का रस उद्धृत करके ग्रहण कराया ॥ १४ ॥

काञ्चीखण्डे च ॥

वीणापाणेर्गुरोर्लब्ध्वा मोक्षोपायं सुदर्शनः ।
वेदान्तवेद्यं सद्धर्मं संजग्राह च वर्गशः ॥ १५ ॥

काञ्चीखण्ड में कहा है कि,-वीणापाणि, गुरु श्रीनारदजी से मोक्ष के उपाय, अर्थात् दीक्षा आदि ग्रहण करके श्रीसुदर्शन ने वेदान्तवेद्य सद्धर्म्म का यथाविभाग संग्रह किया ॥१५॥

संमोहनतंत्रे च,-

हविर्द्धानाभिधानस्तु चक्रमासीन्महामुनिः ।
सोऽतप्यत तपस्तीव्रं निम्बक्वाथैकभोजनः १६

आशु सिद्धिकरं मंत्रंविंशत्पर्णं च जप्तवान् ।
अनंतरं मारबीजाद्यग्न्यारूढं तदेव तु ॥ १७॥
दध्यौ वृन्दावने रम्ये माधवीमण्डपे प्रभुः ।
राधिकां रुक्मवर्णांगीं हरिं गोपालरूपिणम्१८

सम्मोहनतन्त्र में भी कहा है कि,—महामुनि श्रीनिम्बार्क सुदर्शनचक्र के अवतार हैं। इन्हीं का नाम हविर्धर्म्न भी है। ये एक समय नीम के क्काथ (काढ़े) को भोजन करके महा तप करते हुए। उस समय ये अष्टादशाक्षर श्रीगोपालमन्त्र का जप करते हुए। वे महाप्रभु श्रीवृन्दावन के माधवीकुञ्ज में तपस्या करते तथा गौरवर्णाङ्गी श्रीराधा एवं गोपालरूपी श्रीकृष्ण का ध्यान करते थे ॥१६॥१७॥१८॥

भविष्ये च,--

पुरुषार्थप्रवर्षित्वात्सेवांगीकृतया स्वयम् ।
कर्मणा मोक्षरूपेण निम्बार्क इति विश्रुतः ॥१९

भविष्यपुराण में लिखा है कि,—पुरुषार्थ के प्रवर्षण करने से, स्वयं भगवत्सेवा के अङ्गीकार करने से, तथा मोक्षरूप कर्म करने से आप श्रीनिम्बार्क नाम से विख्यात हुए ॥ १९ ॥

कृष्णोनिषदि ॥

गोप्योगाव ऋचस्तस्य यष्टिका देहसंज्ञिनी ।
मित्रभावे स्तोककृष्णः सखीत्वे रङ्गदेविका २०

गोषु धूसरिका चैव वंशी नृत्ये सुदर्शनः ।
कान्तिरूपेण राधायां चक्ररूपेण केशवे ॥२१॥

श्रीकृष्णोपनिषत् में लिखा है कि श्रीकृष्ण की गोपियां और गौवें ऋचाएं हैं, तथा देहसंङ्गिनी यष्टिका, मित्रभाव में स्तोक कृष्ण, सखीभाव में रङ्गदेवी, गौवों में धूसरिका, नृत्य में वंशी, सुदर्शन हो हैं। ये श्रीराधा में कान्तिरूप से, तथा श्रीकृष्ण में चक्ररूप से स्थित हैं ॥ २० ॥ २१ ॥

द्वापरे ह्यवतीर्याथ तपस्तप्त्वा सुदुश्चरम् ।
कलौ निम्बार्करूपेण संप्रदायप्रवर्त्तकः ॥ २२ ॥

श्रीसुदर्शनचक्र द्वापर में अवतार धारण कर, तथा दुश्चर तप करने के उपरान्त कलियुग में श्रीनिम्बार्क-रूप से सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक हुए ॥ २२ ॥

हविर्द्धानाभिधानस्य चरितं परमाद्भुतम् ।
पठनाच्छ्रवणात्सद्यः सर्वपापप्रणाशनम् ॥२३

हविर्धान नामक चक्रराज श्रीसुदर्शनजी का यह परम अद्भुत चरित पढ़ने और सुनने से सब पापों का नाश कर देता है ॥ २३ ॥

वामने,—

कर्णकस्थ शुभे क्षेत्रे वदर्य्याश्रममण्डले ।
ऐरावत्यां क्वचिज्जातः प्राक्कल्प इति मे श्रुतम्२४

वामनपुराण में सूतजी ने कहा है कि,—वदर्य्याश्रम-मण्डल में कर्णक (कनखल) (१) क्षेत्र

(१) "कर्णक" प्रयाग को भी कहते हैं।

में ऐरावती के समीप श्रीसुदर्शन भगवान् पूर्वकल्प में कभी प्रकट हुए थे, ऐसा मैंने सुना है ॥२४॥

पाद्मे, उत्तारखण्डे, निम्बार्कदेवतीर्थ-
नामाध्याये,-

श्रीनिम्बार्कात्परं तीर्थं न भूतं न भविष्यति ।
यत्रस्नात्वा च पीत्वा च मुक्तिभागी भवेद्ध्रुवम्

पद्मपुराण के उत्तर खण्ड में श्रीनिम्बार्कदेवतीर्थ-नामक अध्याय में लिखा है कि,-श्रीनिम्बार्कतीर्थ से बढ़कर न कोई तीर्थ हुआ और न होगा । जहां पर स्नान करने और जहां के जलपान करने से मनुष्य अवश्यमेव मुक्ति का भागी होता है ॥ २५ ॥

एतच्चरितमाख्यातं हविर्द्धानाभिधस्य च ।
कल्पत्रयात्पुरावृत्तमधुनापि यथा शृणु ॥ २६॥

यह हविर्धान नामक श्रीसुदर्शन भगवान् का चरित कहा गया, जो कल्पत्रय के पूर्व का है । अब इस कल्प के चरित को सुनो ॥ २६ ॥

इत्याचार्य्यचरित्रस्य विश्रामेऽथ तृतीयके ।
तस्य चक्रावतारत्वे प्रमाणाः परिकीर्तिताः २७

इस प्रकार श्रीआचार्यचरित के तृतीय विश्राम में श्रीनिम्बार्क भगवान् के श्रीसुदर्शनचक्र के अवतार होने में प्रमाण दिए गए ॥२७॥

इतिश्रीमदाचार्यचरितस्य तृतीयो
विश्रामः समाप्तः ॥३॥

॥ १३२ ॥

श्रीश्रीकृष्णाय नमः।

दिनकरशतदीप्तिं कोटिकन्दर्पमूर्त्तिं,
सजलघनशरीरं भक्तपक्षे ह्यधीरम् ।
हरिकरकृतवासं त्यक्तमायाविलासं,
कृतमुनिवरवेषं नौमि निम्बार्कमीशम्॥१॥

सैकड़ों सूर्यों के समान प्रकाशमान, करोड़ों कामदेवों के समान सुन्दर, जलभरे मेघों के से अङ्ग, भक्तों के लिये अधीर, श्रीहरि के कमनीय कोमल कर में निवास करनेवाले, माया के विलास में न भूलनेवाले, मुनिवर-रूप, ईश्वर-समान, श्रीनिम्बार्क-भगवान् को हम प्रणाम करते हैं ॥१॥

श्रीमद्भागवताच्चैव श्रीमद्विष्णुपुराणतः ।
तथा ग्रंथान्तरेभ्यश्च सारमुद्धृत्य यत्नतः ॥ २॥
वामनाच्च भविष्याच्च काञ्चीनैमिषखण्डतः ।
औदुम्बरर्षिवाक्याच्च संक्षेपादुपचीयते ॥ ३ ॥

श्रीमद्भागवत, श्रीविष्णुपुराण, तथा अन्यान्य ग्रन्थों से यत्नपूर्वक सारसंग्रह करके, तथा वामनपुराण से, भविष्यपुराण से, काञ्चीखण्ड से, नैमिषखण्ड से और औदुम्बर ऋषि के वाक्य (औदुम्बरसंहिता) से संक्षेप ही में श्रीमदाचार्यचरणों (श्रीनिम्बार्क) के चरित का हम संग्रह करते हैं ॥२॥३॥

श्रुतिप्रत्यक्षमैतिह्यमनुमानं चतुष्टयम् ।
प्रमाणं सर्वलोकानां तान्विचार्य्य ब्रवीम्यहम्॥४

श्रुतिप्रमाण, प्रत्यक्षप्रमाण, ऐतिह्यप्रमाण, और अनुमानप्रमाण,—सब लोगों के ये चार प्रमाण हैं, इन चारों प्रमाणों का विचार करके हम श्रीमदाचार्यचरित का वर्णन करते हैं ॥४॥

एकदा मुनयः सर्वे कर्मसूत्पन्नसंशयाः ।
विवदन्तोऽवजानंतो ब्रह्माणं शरणं ययुः ॥ ५ ॥

एक समय सब मुनीश्वरों के मन में कर्मों के विषय में संशय (सन्देह) उत्पन्न हुए; तब वे उसके तत्त्व के न जानने के कारण परस्पर विवाद करते हुए श्रीब्रह्माजी के शरण में गए ॥५॥

तत्र गत्वा समासीनं ब्रह्माणं कमलासनम् ।
प्रणम्य तुष्टुवुः सर्वे पप्रच्छुर्निजसंशयम् ॥६॥

वहां (ब्रह्मलोक में) जाकर और कमल के आसन पर विराजमान श्रीब्रह्माजी को प्रणाम करके उन सब मुनीश्वरों ने उनका स्तवन करते करते उनसे अपने सन्देह की बात पूछी ॥६॥

ऋषय ऊचुः।

जगद्धातर्नमस्तेऽस्तु सृष्टिस्थित्यन्तकारक ।
त्वमेकः सर्वभूतानामाधारः परमो गुरुः ॥७॥

ऋषियों ने कहा कि,—हे सृष्टि, स्थिति और अन्त के करने वाले जगत् के विधाता ! आपको प्रणाम है। एक आपही समस्त प्राणियों के आधार और प्रधान गुरु हैं ॥७॥

प्रवृत्तं च निवृत्तं च द्विविधं कर्म वैदिकम् ।
प्रवर्त्तेत निवर्त्तेत यतस्तन्नो वद प्रभो ॥ ८ ॥

हे प्रभो ! हमलोग यह बात जानते हैं कि वैदिककर्म दो प्रकार के हैं,-एक प्रवृत्तिकर्म, और दूसरा निवृत्तिकर्म । तो अब आप यह हमको बताइए कि प्रवृत्तिमार्ग का अवलम्बन करना चाहिए, अथवा निवृत्तिमार्ग का ? ॥८॥

विधिस्तद्धार्दमाज्ञाय जगाम ऋषिभिः सह ।
क्षीराब्धौ यत्र संशेते ह्यनिरुद्धः स्वयं प्रभुः ॥९॥

श्रीब्रह्माजी उन ऋषियों के हृदयगत अभिप्राय को जानकर उन सभों के साथ क्षीरसागर को पधारे, जहां पर साक्षात् प्रभु श्रीअनिरुद्धजी बिराजते हैं ॥९॥

अनिरुद्धो मनोनेता मोक्षोपायं श्रुतिं पुरा ।
मनसोत्पादयित्वा स्वान्मोचयामास संसृतेः १०

श्रीअनिरुद्धजी मन के अधिष्ठाता देवता हैं । आपने पूर्वकाल में अपने मन से श्रुतियों को प्रकट करके निजभक्तों को संसार के बन्धनों से छुड़ाया था १०

न वै निरुध्यते कैश्चित्सत्वादिभिरुपाधिभिः ।
निरुपाधिस्त्वगुणतो ह्यनिरुद्ध इति स्मृतः ११

किसी भी, सत्त्व, रज, तम आदि उपाधियों से निरुद्ध न होने के कारण, तथा अगुण होने के कारण, आप निरुपाधि (उपाधि-रहित) बने रहते हैं, अतएव आप अनिरुद्ध कहाते हैं ॥११॥

तत्र गत्वा प्रणम्याथ हरिं क्षीराब्धिशायिनम्।
कृताञ्जलिः प्रतुष्टाव विधिरेकाग्रमानसः ॥१२॥

अस्तु, वहां जाकर और क्षीरसागर में शयन करनेवाले श्रीहरि भगवान् को प्रणाम करके हाथ जोड़कर श्रीब्रह्माजी एकाग्रमन से उनकी स्तुति करने लगे ॥१२॥

ब्रह्मोवाच ।

खं वायुमग्निं सलिलं महीं च,
संपाद्य कर्माणि करोत्यकर्त्ता ।
हिरण्मयाण्डं विनिवृत्य शेषे,
ह्यंतश्चरो वायुरिवात्मसाक्षी ॥ १३ ॥

श्रीब्रह्माजी ने कहा कि,-हे भगवन् ! आप आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी को बनाकर अकर्त्ता होने पर भी लोकशिक्षार्थ कर्म करते रहते हैं; तथा इस सुवर्णमय अण्ड (ब्रह्माण्ड) को बना कर वायु के समान इसके भीतर संचार करते हुए इसमें शयन (निवास) करते हैं, क्योंकि आप आत्मा के साक्षी हैं ॥१३॥

प्रवृत्तं च निवृत्तं च त्वयैवोत्पादितं प्रभो ।
नाधुना कोऽपि जानाति कर्मणो गतिरीदृशी१४

प्रभो ! प्रवृत्तकर्म और निवृत्तकर्म,-इन दो प्रकार के कर्मों को आप ही ने उत्पन्न किया है, अतएव आपके अतिरिक्त आजकल यह कोई भी

नहीं जानता कि कर्मों की गति ऐसी है ॥१४॥

इत्यभिष्टूयमाने वै खे वागाहाशरीरिणी।
निवृत्ती राधिता मे च कुमारैर्नारदादिभिः १५

इस प्रकार स्तुति किए जाने पर अशरीरिणी वाणी ने आकाश मार्ग से ब्रह्मा को यह उत्तर दिया कि हमको, तथा हमारे भक्त चारों सनकादिकों, और नारदादि महर्षियों को निवृत्ति कर्म ही अधिक मान्य है ॥१५॥

तेषां निदेशपात्रा ये तेऽपि तत्राधिकारिणः।
अधुना वर्त्तयिष्यामीत्युक्त्वा सा विरराम ह१६

तथा च, जो उन चतुः सनकादिकों तथा नारदादि-महर्षियों के निदेश (आज्ञा वा उपदेश) के पात्र हैं, वे भी निवृत्तिमार्ग के अधिकारी हैं। और अब हम पुनः निवृत्तिमार्ग का प्रचार करेंगे। यों कहकर आकाशवाणी अन्तर्धान हुई ॥१६॥

श्रुत्वा संछिन्नसंदेहा ब्रह्माद्याः स्वाश्रमान् गताः
भगवानाह विश्वात्मा स्वांशभूतं सुदर्शनम् ॥१७॥

यों सुनकर निज सन्देह के दूर होने पर ब्रह्मादिक देवता अपने अपने स्थान को पधार गए। तब विश्व के आत्मा श्रीभगवान् ने अपने अंश से उत्पन्न श्रीसुदर्शनजी से यों कहा ॥१७॥

कालेन महता तात नष्टप्रायं शुभावहम्।
निवृत्तिलक्षणं धर्मं ब्रूहि भागवतं परम् ॥ १८ ॥

हे तात! बहुत काल से शुभकारक, श्रेष्ठ, निवृत्तिलक्षण भागवतधर्म नष्टप्राय होरहा है, उसका तुम संसार में पुनः प्रचार करो ॥१८॥

यमुनायास्तटे पुण्ये माथुरे विषये शुभे।
रमणीयतमं धाम मम तेजोंऽशसम्भवम् ॥१९॥

शुभ माथुर-मण्डल में, श्रीयमुना के पवित्र तट पर, हमारे तेजांश से उत्पन्न महारमणीय हमारा धाम श्रीवृन्दावन है ॥१८॥

वनं वृन्दावनं नाम पशव्यं नव काननम् ।
गोपगोपीगवां सेव्यं पुण्याद्रितृणवीरुधम् २०

पशुओं के योग्य, नवीन कानन, गोप, गोपी और गौवों के सेवन करने योग्य, पवित्र पर्वत (गोवर्द्धन) और नवीन तृण तथा वृक्षावलियों से युक्त हमारा धाम श्रीवृन्दावन नाम का वन है ॥२०॥

आश्रमं वर्त्तते दिव्यं महर्षेररूणस्य हि ।
तपश्चरन्ति यत्रस्था ऋषयः शंशितव्रताः २१

वहां पर महर्षि अरुण का रमणीय आश्रम है, जहां पर निवास करके शंशितव्रत ऋषिगण तपस्या करते हैं ॥२१॥

तत्रावतीर्य मद्धर्मान्नारदाद्देवदर्शनात् ।
लब्ध्वा भूम्यां वर्त्तयस्व नष्टप्रायान् ममाज्ञया२२

उन अरुण ऋषि के यहां तुम अवतार धारण करके, तथा देवर्षि नारद से हमारे भागवतधर्म की

शिक्षा को प्राप्त करके नष्टप्राय धर्म का हमारी आज्ञा से पुनः भूमण्डल में प्रचार करो ॥२२॥

त्रिः परिक्रम्य यत्नेन भुवः सर्वास्त्वयानघ ।
विजित्याधार्मिकान्सर्वान्धर्मःस्थाप्यः प्रयततः

हे अनघ ! यत्नपूर्वक सारी पृथ्वी की तीन परिक्रमा करके, तथा सब अधर्मियों को परास्त करके विधिपूर्वक भागवतधर्म का स्थापन करो ॥२३॥

अहमप्यागमिष्यामि धर्मसंस्थापनाय हि ।
वृन्दावने यशोदायाः संभवामि गृहेऽमले ॥२४॥

धर्म संस्थापन करने के लिये हम भी आवेंगे । श्रीवृन्दावन में, श्रीयशोदा के पुनीत घर में हम प्रकट होंगे ॥ २४ ॥

माथुरे नैमिषारण्ये द्वारावत्यां ममाश्रमे ।
कपिलस्याश्रमादौ च स्थितिः कार्य्या त्वयानघ

माथुरमण्डल में, नैमिषारण्य में, द्वारकापुरी में, हमारे आश्रम (वदरिकाश्रम) में, और कपिलाश्रम (गङ्गासागर-सङ्गम) आदि पुनीत स्थानों में तुम कुछ काल लों निवास करना ॥२५॥

ओमित्यादेशमादाय भगवान् श्रीसुदर्शनः ।
भक्ताभीष्टप्रदः साक्षादवतीर्णो महीतले ॥ २६ ॥

श्रीभगवान् के बचन को सुन और—"जो आज्ञा" ऐसा कहकर भक्तों के मनोरथ पूरे करनेवाले साक्षात् श्रीसुदर्शन-भगवान् ने भूमण्डल में अवतार धारण

किया ॥ २६ ॥

आसीत्तपोनिधिर्दान्तो ब्राह्मणः सर्वधर्मवित् ।
नाम्नारुण इति ख्यातो वेदवेदांगपारगः ॥२७॥

सब धर्मों के जाननेवाले, श्रेष्ठ, तपोधन, अरुण नाम के एक वेदवेदाङ्ग में पारङ्गत ब्राह्मण थे ॥२७॥

वृन्दावने महापुण्ये तपश्चर्यापरायणः ।
भार्य्या च तादृशी तस्य जयन्ती पतिदेवता २८.

वे महर्षि परमतपस्वी थे और परमपावन श्रीवृन्दावन में निवास करते थे । उनकी पतिदेवता जयन्ती नाम की भार्या भी अपने पति (अरुणऋषि) के अनुरूप ही पुण्यशीला थीं ॥ २८ ॥

समाहितं तेन तेजो विष्णुचक्रसमुद्भवम् ।
दधार मनसा देवी जयन्ती शुभलक्षणा ॥ २९॥

उन अरुण ऋषि ने श्रीविष्णु के चक्र (सुदर्शन) के जिस तेज को प्राप्त किया, उस तेज को शुभलक्षणा जयन्ती देवी ने अपने मन से धारण किया ॥ २८ ॥

अथ सर्वगुणोपेते काले परमशोभने ।
कार्त्तिकस्य सिते पक्षे पूर्णिमायां तिथौ खलु ३०
चन्द्रे च वृषराशिस्थे उच्चस्थे ग्रहपञ्चके ।
कृत्तिकाख्ये च नक्षत्रे सर्वभूतसुखावहे ॥ ३१ ॥
सूर्य्यावसानसमये मेषलग्ने निशामुखे ।
जयंत्यां जयरूपिण्यां जजान जगदीश्वरः ॥३२॥

अनन्तर कार्त्तिक मास के शुक्लपक्ष की पूर्णिमा तिथि को, जब सब गुणों से युक्त परम शोभायमान समय आकर प्राप्त हुआ, तब वृषराशि के चन्द्रमा में, पांच उच्च ग्रहों के रहते, सब प्राणियों को सुखके देनेवाले कृत्तिकानक्षत्र में सूर्यास्त के समय, सायङ्काल को, मेषलग्न में; जयरूपिणी श्रीजयन्ती देवी से जगदीश्वर श्रीसुदर्शन भगवान् प्रकट हुए ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

आविरासीत्पुष्पवृष्टिर्जयशब्दोऽभवद्दिवि ।
ऋषयो मुनयश्चैव ह्युदारमनसोऽभवन् ॥३३॥

उस समय "जयजयकार" के साथ ही साथ आकाश से फूलों की वर्षा हुई और ऋषि तथा मुनिजन परम आनन्दित हुए ॥ ३३ ॥

दृष्ट्वाद्भुतं बालकमम्बुजाक्षं,
गृहांधकारान्तकरं प्रशांतम् ।
बालार्कवह्नीन्दुतिरस्करांगं,
श्यामावदातं हरिमाह बाला ॥३४॥

तब कमलनेत्र, प्रशान्त, अपनी अङ्गप्रभा से बालप्रभाकर, अग्नि, तथा चन्द्रमा को फीका करने वाले, गृहान्धकार के दूर करनेवाले, श्यामस्वरूप अद्भुत बालक, श्रीहरि से श्रीजयन्ती देवी ने यों कहा ॥ ३४ ॥

देवाधिदेवोऽथ दिवाकरो वा,

दिव्यांबरो देवगणाधिपो वा।
कस्त्वं मदीये जठरेऽभिजातो,
ब्रूह्यंग वंदे तव पादपद्मम्॥ ३५॥

हे अङ्ग! तुम देवाधिदेव (महादेव) हो, या साक्षात् सूर्य हो; अथवा दिव्य अम्बर धारण करने वाले गणेशजी हो? तुम कौन हो, जो मेरे उदर से प्रकट हुए? बताओ, मैं तुम्हारे चरणारविन्दों की वन्दना करती हूं॥ ३५॥

इति श्रुत्वा वचो मातुः स बालोऽद्भुतदर्शनः।
वाण्या मधुरया स्नेहं वर्द्धयन्निजगाद ह॥३६॥

इस प्रकार माता (श्रीजयन्तीदेवी) के बचन सुनकर वे अद्भुतदर्शन बालक (श्रीसुदर्शन) मधुर वाणी से निज जननी का स्नेह बढ़ाते हुए इस प्रकार बोले॥ ३६॥

ऐरावत्यां पुरा कल्पे हविर्धान इति श्रुतः।
बभूवाद्य पुनर्जातस्तव प्रेमनिबंधनात्॥३७॥

हे मातः! तुमने सुना होगा कि पूर्व कल्प में ऐरावती में "हविर्धान" नाम के एक दिव्य पुरुष प्रकट हुए थे। वेही (हम) आज पुनः तुम्हारे प्रेम के वशीभूत होकर तुम्हारे यहां प्रकट हुए॥ ३७॥

अरुणोऽपि वचः श्रुत्वा गतवान् सूतिकागृहम्।
धन्योस्मीति ब्रुवन्स्तौद्गिरा गद्गदया सुतम् ३८

अरुण ऋषि ने भी जब ये बचन सुने, तब वे

सूतिकागार में जाकर अपने को "धन्य धन्य" कहते हुए प्रेमगद्गदवाणी से यों स्तुति करने लगे ॥३८॥

अरुण उवाच।

नवजलधरकांतिं कोटिलावण्यमूर्त्तिं,
दिनकरशतभासं कोटिचन्द्रप्रकाशम्।
चिदचिदखिलविश्वं भासया भासयंतं,
शरणमुपगतोहं गुप्तवेषं सुवेषम् ॥३९॥

नवजलधरकान्ति, कोटिलावण्यमूर्त्ति, सैकड़ों सूर्यों के समान द्युतिविशिष्ट, करोड़ों चन्द्रों के तुल्य प्रकाशमान, सम्पूर्ण चिदचिद् विश्व को अपने तेज से प्रभावान करनेवाले, गुप्तवेष, और सुन्दर वेष धारण करनेवाले आपके शरण में हम प्राप्त हुए हैं ॥ ३८ ॥

स्तुत्वा नत्वा लब्धवरोऽरुणश्चात्मसुतस्य च।
जातकर्म चकाराथ ब्राह्मणैर्वेदपारगैः ॥ ४० ॥

इस प्रकार स्तुति और नमस्कार कर, तथा वरों को प्राप्त कर अरुण मुनि ने वेदपारग ब्राह्मणों के साथ अपने पुत्र (श्रीसुदर्शन) का जातकर्म संस्कार किया ४०

इत्याचार्य्यचरित्रस्य विश्रामेऽथ चतुर्थके।
श्रीमन्निम्बार्कदेवस्यावतारः परिकीर्त्तितः॥४१॥

इस प्रकार श्रीमदाचार्यचरित के चतुर्थ विश्राम में श्रीमन्निम्बार्कदेव के अवतार धारण करने का वर्णन किया गया ॥ ४१ ॥

इतिश्रीमदाचार्यचरित्रस्य चतुर्थो विश्रामः समाप्तः ॥१७३॥

श्रीश्रीकृष्णाय नमः ।

सायं स्वाश्रममागताय यतये,
ऽप्यस्तं गते भास्करे ।
निम्बक्षोणिरुहे निदर्श्य तरणिं,
येनाप्रमेयात्मना ॥
लोकेस्मिन् महिमाप्यदर्शि नियमे-
नानन्दयन् सज्जनान् ।
सोऽयं निम्बविभावसुर्विजयता-
माचार्यवर्यः सदा ॥१॥

सायंकाल में निज आश्रम में आए हुए यति को, रवि के अस्त होने पर भी निम्ब-वृक्ष के ऊपर सूर्य को दिखलाकर जिन महात्मा ने इस लोक में अपनी महिमा प्रकट की, और सज्जनों को नियम से आनन्दित किया, वे आचार्य्यवर्य्य श्रीनिम्बार्क भगवान् सदैव विजय को प्राप्त हों ॥१॥

सुदर्शनावतारस्य श्रुत्वा वृत्तांतमद्भुतम् ।
आनंदमतुलं लेभे ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ २ ॥

श्रीसुदर्शनावतार के अद्भुत वृत्तान्त को सुनकर लोकपितामह श्रीब्रह्माजी परमानन्द को प्राप्त हुए ॥२॥

कदाचिदृषिवर्ये तु क्वापि याते विधिः स्वयम् ।
यतिरूपधरो यातो बालदर्शनलालसः ॥ ३ ॥

एक समय, जब कि ऋषिवर्य अरुणमुनि कहीं बाहर गए हुए थे, तब स्वयं श्रीब्रह्माजी यति का रूप

धारण करके बालक (पांच वर्ष के श्रीसुदर्शन) के दर्शन करने की लालसा से उनके आश्रम में पधारे ॥ ३ ॥

तन्मात्रा सत्कृतो भक्त्या भोजनाय च प्रार्थितः
अतिकालं विचिंत्याथ यतिर्गंतुं मनो दधे ॥४॥

तब उनकी माता श्रीजयन्ती देवी ने भक्तिभाव से उन यति (ब्रह्मा) का सत्कार किया और उनसे भोजन करने की प्रार्थना की । यह सुन और अतिकाल अर्थात् सूर्यास्त का समय जान कर यति ने भोजन करना अस्वीकार कर वहांसे चले जाने की इच्छा की ॥ ४ ॥

संध्याकाले च संप्राप्ते कर्म चत्वारि वर्जयेत् ।
आहारं मैथुनं निद्रां स्वाध्यायं च विशेषतः ५

क्योंकि संध्याकाल में आहार, निद्रा, मैथुन और विशेषकर वेदाध्ययन,—इन चार कामों को नहीं करना चाहिए ॥ ५ ॥

आहाराज्जायते व्याधिर्गर्भो दुष्टश्च मैथुने ।
निद्रया ह्रियते लक्ष्मीः स्वाध्याये मरणं ध्रुवम् ६

इसका कारण यह है कि आहार से व्याधि की उत्पत्ति होती है, मैथुन से दुष्ट गर्भ रह जाता है, निद्रा से लक्ष्मी का नाश होता है और स्वाध्याय से अवश्यमेव मृत्यु होती है ॥ ६ ॥

इति दोषं विचिंत्यासौ यदा गंतुं मनो दधे ।

दर्शयिष्यन् स्वमाहात्म्यं मानयन्धर्ममुत्तमम् ७
आह बालस्तदाऽऽगत्य कृत्वा पादाभिवंदनम् ।
भोजनं कुरु भो स्वामिन् पश्य निम्बे दिवाकरम्

इस प्रकार दोष का स्मरण करके जब वे यति (ब्रह्मा) जाने लगे, तब उत्तम धर्म के मान रखने के लिये अपने माहात्म्य को दिखलाते हुए, बालक (श्रीसुदर्शनजी) ने उन यतिजी के समीप जाकर और उनके चरणारविन्द की वन्दना करके यों कहा कि,—"हे स्वामिन् ! आप कृपा कर भोजन कीजिए, क्योंकि अभी निम्बवृक्षपर सूर्यनारायण हैं, यह देख लीजिए" ॥ ७ ॥ ८ ॥

इत्युक्त्वा दर्शयामास निम्बस्योपरि भास्करम्
श्रद्धाय वाक्यं स यतिर्भोजनार्थं विवेश ह ॥९॥

इतना कहकर श्रीसुदर्शनजी ने यतिजी को नीम के पेड़ के ऊपर स्थित सूर्य का दर्शन कराया । तब वे यतिजी उन बालमूर्त्ति श्रीसुदर्शनजी के वचन को मानकर भोजन करने के लिये विराजे ॥९॥

अन्नं चतुर्विधं स्वादु भुक्त्वा पीत्वा जलं शुचिः
भोजनादुत्थितोऽपश्यद्रात्रिं दण्डचतुष्टयाम् १०

भक्ष्य, भोज्य, लेह्य, पेय,—इन चतुर्विध प्रकार के सुस्वादु भोजन को कर तथा पवित्र श्रीयमुनाजल पान करके जब यतिजी भोजन करके उठे, तब उन्होंने क्या देखा कि,—'रात्रि चार दण्ड व्यतीत

होगई है !'॥ १० ॥

आश्चर्यमतुलं दृष्ट्वाविस्मयाविष्टमानसः।
ध्यानप्राप्तं विष्णुचक्रं तुष्टाव स कृताञ्जलिः ११

ऐसे आश्चर्यमय वृत्तान्त को देख यतिजी के मन में बड़ा विस्मय हुआ। तब उनके ध्यान में श्रीसुदर्शनजी प्राप्त हुए। यह देख वे हाथ जोड़कर श्रीसुदर्शनजी की स्तुति करने लगे ॥ ११ ॥

यतिरुवाच।

सुदर्शन महाबाहो कोटिसूर्य्यसमप्रभ।
अज्ञानतिमिरांधानां विष्णोर्मार्गं प्रदर्शय॥१२॥

श्रीयतिजी ने कहा,-'हे सुदर्शन, हे महाबाहो, हे कड़ोरों सूर्यों के समान प्रभावान! जो संसारी जीव अज्ञानरूपी अन्धकार से अन्धे होरहे हैं, उन्हें तुम श्रीविष्णुभगवान् का मार्ग (भक्तिमार्ग) दिखलाओ १२

यदर्थमवतीर्णोसि तत्साधय सुसांप्रतम्।
इतोऽचिरेण कालेन नारदश्चागमिष्यति॥१३॥

तुमने जिस कार्य के लिये अवतार धारण किया है, उस काम को अब भलीभांति पूरा करो। अब थोड़े ही दिनों में श्रीनारदजी तुम्हारे यहां आवैंगे ॥१३॥

तेन लब्ध्वा परं ज्ञानं भक्तिभावसमन्वितम्।
अक्षयं निर्मलं रम्यं कृतकृत्यो भविष्यसि ॥१४॥

उन श्रीनारदजी से भक्तिभाव-युक्त, अक्षर, निर्मल, रमणीय, और श्रेष्ठ ज्ञान को लाभ करके

तुम कृतार्थ होजाओगे ॥१४॥

निम्बे मे दर्शितश्चार्कस्ततो निम्बार्कनामवान्।
भविष्यसीति विख्यातो लोके शास्त्रे विशेषतः१५

तुमने हमें निम्ब के ऊपर अर्क दिखाया, इस लिये आज से लोकों और विशेषकर शास्त्रों में तुम "निम्बार्क" नाम से विख्यात होगे ॥ १५ ॥

आरुणिस्त्वरुणाज्जातो जायन्तेयो जयन्तिजः।
वेदार्थवृंहणत्वाच्च नियमानंद इत्यपि ॥ १६॥

अरुण ऋषि के पुत्र होने के कारण "आरुणि, जयन्तीनन्दन होने के हेतु "जायन्तेय" और वेदार्थ के विस्तार करने के अर्थ तुम "नियमानन्द" नाम से प्रख्यात होगे ॥ १६ ॥

बहूनि संति नामानि रूपाणि च युगे युगे ।
ऋषिभिः परिगीतानीत्युक्त्वा चांतर्हितो विधिः

युग युग में तुम्हारे नाम और रूप बहुत से होते रहते हैं, जिन्हें ऋषिमुनि गाया करते हैं। यों कहकर श्रीब्रह्माजी अन्तर्धान होगए ॥१७॥

इत्याचार्यचरित्रस्य विश्रामश्चैव पञ्चमः ।
यत्राचार्यवरस्यास्य चरितं कीर्त्तितं परम्॥१८॥

इस प्रकार श्रीमदाचार्यचरित्र का पञ्चम विश्राम समाप्त हुआ, जिसमें इन आचार्यवर्य श्रीनिम्बार्क-भगवान् के श्रेष्ठ चरित कहे गए ॥१८॥

इतिश्रीमदाचार्यचरितस्य पंचमो विश्रामः समाप्तः १८१

श्रीश्रीकृष्णाय नमः ।

अथ निम्बार्कदेवस्य वक्ष्यामि चरितं शुभम्।
यथा नारद आगत्य ब्रह्मविद्यामुपादिशत्॥१॥

अब यहां पर श्रीनिम्बार्कभगवान् का और एक शुभ चरित कहते हैं, जिस प्रकार से श्रीनारद भगवान् ने आकर उन (निम्बार्क) को ब्रह्मविद्या का उपदेश किया था ॥ १ ॥

कदाचिदटमानस्तु नारदो देवदर्शनः ।
सुदर्शनाश्रमे प्रागाद्यत्रारुणिरभूदृषिः ॥ २ ॥

एक समय भ्रमण करते हुए देवदर्शन श्रीनारदजी श्रीसुदर्शनाश्रम में आए, जहां पर श्रीअरुण ऋषि के पुत्र (आरुणि) हुए थे ॥ २ ॥

तमागतं स विज्ञाय देवर्षिमकुतोभयम् ।
अरुणः सहसोत्थाय विधिवत्प्रणनाम ह॥ ३ ॥

उन निर्भय, देवर्षि श्रीनारदजी को आते हुए देखकर अरुण ऋषि ने सहसा उठकर विधिपूर्वक उन्हें प्रणाम किया ॥ ३ ॥

आरुणिश्चापि तं दृष्ट्वा महाभागवतं ऋषिम् ।
चिन्तयामास हृदये कोयमद्धा समागतः ॥४॥

अरुणऋषि के पुत्र (आरुणि) ने भी महाभागवत ऋषि को देखकर मन में चिन्तन किया कि इस समय ये कौन आए ॥ ४ ॥

शङ्खेन्दुकुन्दधवलं सकलागमज्ञं,
सौदामिनीततिपिशंगजटाकलापम् ।
कृष्णांघ्रिपंकजगतामचलां च भक्तिं,
यच्छंतमाशु विगतान्यसमस्तसंगम् ॥ ५ ॥
नानाविधश्रुतिगणान्वितसप्तराग-
ग्रामत्रयीगतिमनोहरमूर्च्छनाभिः ।
संप्रीणयंतमुदिताभिरमुं मुकुन्दं,
संचिंत्य धातृतनयं नमनं चकार ॥ ६ ॥

शंख, चन्द्रमा और कुन्द के समान गौरवर्ण, समस्त आगमों के ज्ञाता, विद्युत्समूह के समान शुभ्रजटा के धारण करनेवाले, श्रीकृष्ण-परमात्मा के चरणारविन्द में अचला भक्ति करनेवाले और शीघ्र उस (भक्ति) के देनेवाले, समस्त सङ्गों से रहित, तथा नाना प्रकार के श्रुतिगणों से युक्त, सप्त स्वरों और तीनों ग्रामों की गति के सहित प्रगट की हुई मनोहर मूर्च्छनाओं से श्रीमुकुन्दभगवान् को प्रसन्न करनेवाले ये ब्रह्मपुत्र श्रीनारदजी हैं,—ऐसा जानकर श्रीनिम्बार्कभगवान् ने भी उन्हें प्रणाम किया ॥५-६॥

पाद्यार्घ्याचमनीयाद्यैः सत्कृत्याथ प्रणम्य च ।
सिंहासने समासीनं नारदं सुरपूजितम् ॥ ७ ॥
कृष्णाज्ञयाऽऽगतं ज्ञात्वा संपूज्य च पुनः पुनः ।
दण्डवत्प्रणिपत्याथ पप्रच्छ निजवांछितम् ॥ ८ ॥

सिंहासनपर विराजमान, सुरपूजित, श्रीनारदजी

का पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय आदि पूजोपकरणों से सत्कार कर तथा प्रणाम करके;—और यह जानकर कि ये श्रीकृष्णभगवान् की आज्ञा से पधारे हैं, बारंबार उनका पूजन और उन्हें दण्डवत्प्रणाम करके श्रीनिम्बार्कमुनि ने उनसे अपने अभिलषित विषय को पूछा ॥ ७ ॥ ८ ॥

यत्तत्वं ब्रह्मपुत्रेभ्यः कुमारेभ्यस्त्वया श्रुतम् ।
कृपया वद तन्मह्यं यतस्त्वं दीनवत्सलः ॥९॥

हे ब्रह्मन् ! जो तत्त्व आपने ब्रह्मनन्दन श्रीचतुः सनकादिकों से सुने हैं, उन्हें कृपाकर मेरे लिये कहिए; क्योंकि आप दीनवत्सल हैं ॥ ९ ॥

न विना गुरुसम्बन्धं ज्ञानस्याधिगमः कृतः ।
गुरुः पारयिता तस्य ज्ञानं प्लवमिहोच्यते ॥१०॥

क्योंकि श्रीगुरुदेव के सम्बन्ध के बिना ज्ञान की प्राप्ति नहीं होती, कारण यह कि इस संसार में श्रीगुरुदेव ही शिष्य को पार करनेवाले हैं, और उनका ज्ञान नौका-स्वरूप है, ऐसा महज्जनों ने कहा है ॥१०॥

इत्यभिव्याहृतं तस्य श्रुत्वा संप्रीतमानसः ।
उवाच श्लक्ष्णया वाचा नारदोऽध्यात्मतत्त्ववित् ॥

अध्यात्म-तत्त्ववित् श्रीनारदजी ने श्रीनिम्बार्क-भगवान् के कथन को सुन, प्रसन्न होकर मीठी वाणी से यों कहा ॥ ११ ॥

भवान् जानाति तत्सर्वं नैव लौकिकमानुष

सुदर्शनावतारस्त्वं कृष्णाज्ञापरिपालकः॥१२॥

अरुणनन्दन ! तुम तो उन सब तत्त्वों को जानते ही हो, क्योंकि तुम कोई लौकिक मनुष्य नहीं हो। तुम श्रीकृष्णभगवान् की आज्ञा का प्रतिपालन करनेवाले साक्षात् सुदर्शन के अवतार हो ॥ १२ ॥

अथापि कारयिष्यामि संस्कारं विधिपूर्वकम्।
असंस्कृतस्य जीवस्य कृतं सर्वं निरर्थकम् ॥१३॥
अद्य पित्रा तवाद्धाहं यमुनायास्तटेऽमले।
यज्ञोपवीतसंस्कारं करिष्ये विधिवद् द्विजः १४
ततः परं प्रदास्यामि ज्ञानं परमदुर्लभम् ।
वैराग्यसहितं नित्यं हरिभक्तिसमन्वितम् ॥१५॥

अच्छा, तौभी प्रथम हम श्रीयमुनाजी के निर्मल त: पर आज तुम्हारे पिता के द्वारा तुम्हारा वि धिपूर्वक यज्ञोपवीतसंस्कार कराते हैं । क्योंकि असं स्कृत जीव के किए हुए सब कर्म व्यर्थ होते हैं, अतए व हे द्विज ! प्रथम हम तुम्हारा विधिपूर्वक यज्ञोप वीत संस्कार करेंगे। तदनन्तर वैराग्य-सहित तथा श्रीहरिभक्तियुक्त परमदुर्लभ ज्ञान को तुम्हें प्रदान करेंगे ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥

इत्युक्त्वा स मुनिश्रेष्ठः सावित्रं ह्यर्थगर्भितम्।
कारपूर्वकं मंत्रं तस्मै ह्युपादिदेश ह ॥१६॥
ख्यां प्रददौ प्रेम्णा निम्बार्कं नारदःस्वयम् ।

मदाज्ञया भवाशु त्वं हरिदासो हरिप्रियः॥१७॥

यों कहकर उन मुनिश्रेष्ठ श्रीनारदजी ने यज्ञोपवीत संस्कार कराकर अर्थगर्भित सावित्रमंत्र (गायत्रीमंत्र) का उन श्रीनिम्बार्क को उपदेश किया, और प्रेम से स्वयं श्रीनारदजी ने श्रीनिम्बार्क को यह आख्यादी कि हमारी आज्ञा से तुम शीघ्र ही हरिप्रिय हरिदास हो जाओ ॥ १६ ॥ १७ ॥

ततः परं ददौ तस्मै इमं मंत्रं सुदुर्लभम् ।
न्यासध्यानसमायुक्तं विनियोगपुरस्सरम्॥१८॥
विष्णुभक्तिरहस्यं च ज्ञानं चैवात्मदर्शनम् ।
सहोपनिषदान्वेदान्सर्वानुपदिदेश च ॥ १९ ॥

इसके अनन्तर श्रीनारदजी ने श्रीनिम्बार्क को न्यास और ध्यान से युक्त, तथा विनियोगपुरस्सर, निम्नलिखित सुदुर्लभ इस मंत्र, श्रीविष्णुभक्ति के रहस्य, आत्मदर्शन ज्ञान, तथा समस्त उपनिषदों के सहित चारों वेदों का उपदेश किया ॥ १८ ॥ १९ ॥

ऋषिच्छंदःसमायुक्तं मन्त्रमष्टादशाक्षरम् ।
यथोक्तविधिना प्रादात् पञ्चसंस्कारपूर्वकम् २०

फिर पंचसंस्कार कराकर ऋषि और छन्द से युक्त, ऊपर कहे गए अष्टादशाक्षर मन्त्रराज (श्रीगोपालमन्त्र) का यथोक्तविधि से उपदेश किया, अर्थात् उनको मन्त्रशिष्य किया ॥ २० ॥

विद्यां पञ्चपदीं प्राप्य ब्रह्मविद्यां सनातनीम् ।
प्रणिपत्य गुरुं भूयो नारदं भगवत्प्रियम् ॥ २१ ॥

इस प्रकार गुरुदेव श्रीनारदजी से पञ्चपदी विद्या, तथा सनातनी ब्रह्मविद्या को प्राप्त करके, प्रणाम कर पुनः श्रीनिम्बार्कदेव ने भगवान् के प्यारे श्रीनारदजी को प्रणाम किया ॥ २१ ॥

उवाच भगवन् किं वा वेदांतस्य रहस्यकम् ।
नारदोऽपि तथावोचच्छित्वा तत्सर्वसंशयान् २२

और यों कहा कि हे भगवन् ! वेदान्त का रहस्य क्या है ? यह सुनकर श्रीनारदजी ने वेदान्त का रहस्य कहकर उनके समस्त संशयों को दूर किया ॥२२॥

जानीहि तत्त्वं त्रिविधं चेतनाचेतनात्मकम् ।
द्विविधं चेतनं त्वेकविधं प्राहुरचेतनम् ॥ २३ ॥

श्रीनारदजी ने कहा, हे ब्राह्मणे ! तुम यह जानो कि 'तत्त्व' तीन प्रकार के हैं। उनके दो भेद हैं, अर्थात् चेतन तत्त्व और अचेतन तत्त्व। चेतनतत्त्व दो प्रकार के हैं और अचेतन एक प्रकार का ॥२३॥

जीवात्मा परमात्मा च चेतनत्वेन चेरितः ।
मायादिपदवाच्यं तदचेतनमुदाहृतम् ॥ २४ ॥

जीवात्मा और परमात्मा, ये दो चेतनतत्त्व हैं। और मायादि-पदवाच्य दृश्य जगत् अचेतन तत्त्व कहाते हैं ॥ २४ ॥

परमात्मा एक एव जीवात्मानेक एव च।

जानीह्यचेतनं दृश्यं मायादिपदशब्दितम् ॥२५॥

परमात्मा एक है, जीवात्मा अनेक, अर्थात् प्रति शरीर में भिन्न है; और दृश्य-जगत्, काल तथा अप्राकृत-लोकादि माया-पदवाच्य अचेतन तत्त्व है ॥ २५ ॥

स भेदाभेदसम्बन्धो जगतः परमात्मनः ।
इति वैदिकसिद्धान्तः सर्वर्षिगणसम्मतः ॥२६॥

इस प्रकार परमात्मा और जगत् का स्वाभाविक भेदाभेद सम्बन्ध है, अर्थात् नामरूपादि से तो इस जगत् का परमात्मा से भेद है, परन्तु परमात्मा के बिना इस दृश्यादृश्य जगत् की स्थिति-प्रवृति नहीं रह सकती, अतएव परमात्मा के साथ इस (जगत्) का अभेद है; यही स्वाभाविक भेदाभेद-सम्बन्ध है। यह वैदिक सिद्धान्त समस्त ऋषिगणों का सम्मत है ॥ २६ ॥

ततस्तु कथयामास संवादं ब्रह्मसम्मितम् ।
श्रीहंसस्य कुमाराणां नारदो भगवत्प्रियः ॥२७॥

तदनन्तर श्रीभगवान् के प्यारे श्रीनारदजी ने श्रीनिम्बार्क से श्रीहंसभगवान् तथा चारों सनकादि कुमारों का ब्रह्मसम्मित संवाद कह सुनाया ॥२७॥

मुनेश्चक्रावतारस्य संवादं ब्रह्मसंमितम् ।
गोष्ठीरहस्यकं नाम वैराग्यादि चतुष्कदम् ॥२८॥

श्रीनारदजी तथा निम्बार्कभगवान् का यह 'गोष्ठीरहस्य' नामक संवाद ब्रह्मसम्मित है ।

यह वैराग्य आदि, अर्थात् वैराग्य १ ज्ञान २ भक्ति ३ मुक्ति ४ इन चारों पदार्थों का देनेवाला है ॥ २८ ॥

यावतं कृतवान्प्रश्नान्भगवान् श्रीसुदर्शनः ।
उपदिश्य क्रमात्सर्वान् ययौ यादृच्छिको मुनिः २९

फिर तो श्रीनिम्बार्कभगवान् ने जितने प्रश्न किए, उन सभों का यथायोग्य उपदेश देकर मनस्वी श्रीनारदजी पधार गए ॥ २९ ॥

ऋषिवर्य्योऽरुणश्चापि पुत्रादाध्यात्मिकीं गतिं
ज्ञात्वा शान्तः परं तत्त्वं विचचार महीतले ॥३०॥

ऋषिवर्य अरुणमुनि भी निजपुत्र से परमतत्त्व और आध्यात्मिकी गति को ज्ञान कर शान्त हुए और भूमण्डल में परिभ्रमण करने लगे ॥ ३० ॥

स्वयं वृहद्व्रतधरो नैष्ठिको ब्रह्मचर्य्यवान् ।
मात्रे धर्मानुपदिशन्नुवास कतिचित्समाः॥३१॥

स्वयं श्रीनिम्बार्कभगवान् वृहद्-व्रत धारण करके नैष्ठिक ब्रह्मचारी हुए । फिर उन्होंने कई वर्ष तक निज आश्रम में निवास करके अपनी माता श्रीजयन्ती देवी को तत्त्वज्ञान का उपदेश किया था ३१

इत्याचार्यचरित्रस्य षष्ठो विश्राम ईरितः ।
यत्र श्रीनारदेनास्य संस्कारस्तु कृतोऽखिलः ३२

इस प्रकार श्रीआचार्यचरित का छठां विश्राम कहा गया, जिसमें श्रीनारदजी ने इन (श्रीनिम्बार्क) का समस्त संस्कार किया था ॥ ३२ ॥

इतिश्रीमदाचार्यचरितस्य षष्ठोः विश्रामःसमाप्तः ॥२२३॥

श्रीश्रीकृष्णायनमः ।

अथापरं प्रवक्ष्यामि चरितं तस्य पावनम् ।
भक्तानां सुखदं नित्यं हरिभक्तिप्रदं नृणाम् १

श्रीनिम्बार्कभगवान् के अब और पुनीत चरित का वर्णन करते हैं, जो (चरित) भक्तजनों को नित्य ही सुख और हरिभक्ति के देनेवाले हैं ॥१॥

एकदा प्रातरुत्थाय श्रीनिम्बार्को मुनीश्वरः ।
सूर्यपुत्रीं नदीं यातः स्नानाय कृतमङ्गलः ॥ २ ॥

एक दिन श्रीनिम्बार्कमुनीश्वर प्रातःकाल उठ कर मङ्गलाचरण करते हुए श्रीयमुनास्नान के लिये पधारे ॥ २ ॥

यदा स्नातुं निमग्नोऽभूज्जले तस्य महात्मनः ।
तदा पादौ समागत्य कोऽपि पस्पर्श कच्छपः ३

जब स्नान के लिये उन महात्मा (श्रीनिम्बार्क) ने यमुना में गोता लगाया, तब किसी कच्छप ने आकर उनके चरणों का स्पर्श किया ॥ ३ ॥

स तस्य चरणाम्भोजयुगस्पर्शहताशुभः ।
कूर्मरूपं परित्यज्य दिव्यरूपो बभूव ह ॥ ४ ॥

श्रीनिम्बार्कदेव के युगलचरणारविन्दों के स्पर्श करने से उस कच्छप के समस्त पातक दूर होगए, और उसने कछुए के रूप को छोड़कर दिव्यरूप धारण किया ॥ ४ ॥

दिव्याम्बरं दिव्यरूपं दिव्यभूषणभूषितम् ।

दृष्ट्वा तं पुरुषं श्रीमानपृच्छन्मुनिसत्तमः ॥ ५ ॥

उस दिव्य अम्बरधारी, दिव्य आभरणों से भूषित और दिव्य रूप को देखकर मुनिश्रेष्ठ, श्रीमान्, श्रीनिम्बार्कभगवान् ने उस पुरुष से यों पूछा ॥ ५ ॥

को भवान्दिव्यरूपेण प्रभामण्डितविग्रहः ।
निन्दितामीदृशीं योनिं प्रापितः केन कर्मणा ॥६॥

प्रभा से भूषित-कलेवर, तथा दिव्यरूप धारण करनेवाले आप कौन हैं, और किस कर्म से आपने ऐसी निन्दित (कछुए की) योनि पाई ? ॥ ६ ॥

इति श्रुत्वा वचस्तस्य मूर्ध्ना तच्चरणं स्पृशन् ।
पूर्वशापं स संस्मृत्य कृताञ्जलिरभाषत ॥ ७ ॥

श्रीनिम्बार्कभगवान् के ऐसे वचन सुन और अपने मस्तक से उनके चरणों का स्पर्श करके पूर्व शाप को स्मरण करते हुए उस दिव्यरूप पुरुष ने हाथ जोड़कर यों कहा ॥ ७ ॥

जानासि भगवन् सर्वं भूतानां वहिरंतरम् ।
गुप्तोऽसि नरलोकेऽस्मिन् लोकधर्ममनुव्रतः ॥८॥

हे भगवन् ! आप समस्त प्राणियों के बाहर-भीतर का सब वृत्तान्त जानते हैं । इस जीवलोक में सम्प्रति आप मनुष्यधर्म का आचरण करते हुए अपने को छिपाए हुए हैं ॥ ८ ॥

तथापि कथये सर्वं भवदाज्ञानियंत्रितः ।
पूर्वजन्मनि भो स्वामिन्यत्कृतं दुष्कृतं मया ९

अतएव हे स्वामिन् ! यद्यपि आप सर्वज्ञ हैं, तथापि आपकी आज्ञा का वशवर्त्ती होकर मैं सब वृत्तान्त कहता हूं, जो कि पूर्वजन्म में मैंने दुष्कर्म किया था ॥ ९ ॥

अहं पुराऽभवं कश्चित्पतङ्ग इति संज्ञितः ।
मुनिर्विज्ञानसम्पन्नस्तपस्वी ब्रह्मवित्तम ! ॥१०॥

हे ब्रह्मवेत्ताओं में श्रेष्ठ ! पूर्व समय में 'पतङ्ग' नामक ज्ञान-विज्ञान-सम्पन्न तपस्वी (मुनि) मैं हुआ था ॥ १० ॥

एतस्या यमुनायाश्च एकस्मिन् रोधसि प्रभो: ।
ममाश्रमोऽभूद्धेनाथ द्वितीये कुम्भजन्मनः ॥११॥

हे प्रभो ! हे नाथ ! इसी यमुना के एक तट पर मेरा आश्रम था, और दूसरे कूल पर अगस्त्यमुनि का आश्रम था ॥ ११ ॥

एवन्निवसतोरस्या रोधसोरुभयोरपि ।
कालोमहान्व्यतीयाय कुर्वतोस्तप उत्तमम् ॥१२॥

इस प्रकार इस यमुना के दोनों तटों पर निवास कर के उत्तम तप करते हुए हम-दोनों को बहुत काल बीत गए थे ॥१२॥

एकस्मिन्समये श्रीमानगस्त्यः स्नातुमागतः ।
परब्रह्म हृदिध्यायन् जलांतःप्राविशद्यदा ॥१३॥
तदाहमागतः स्नातुं निमज्ज्याम्बुनि कूर्मवत् ।
गृहीत्वा चरणौ तस्य चकर्ष विधिमोहितः ॥१४॥

एक समय श्रीमान् अगस्त्यमुनि हृदय में परब्रह्म का चिन्तन करते हुए स्नान करने आए। सो जब वे जल में घुसे, तब मैं भी स्नान के लिये आया और विधिमोहित होकर मैंने उनके दोनोंचरणोंको कूर्मवत् पकड़ कर उन्हें जल में खींच लिया ॥१३-१४॥

दृष्ट्वा तन्मम दौरात्म्यं मुनिः क्रोधवशं गतः।
कूर्मतां कर्मणानेन प्रयाहीति शशाप माम् ॥१५॥

मेरे इस दौरात्म्य को देखकर अगस्त्यजी महा कुपित हुए और उन्होंने मुझे यह शाप दिया कि, 'तू इस कुकर्म के करने से कच्छप की योनि को प्राप्त कर' ॥ १५ ॥

तं श्रुत्वा दुस्सहं शापमहमुद्विग्नमानसः।
पतित्वा चरणोपान्ते प्रार्थयामास तं मुनिम् १६

उस दुःसह शाप को सुनकर मैं महा उद्विग्न हुआ और उन मुनिराज के चरणों पर गिरकर उनकी प्रार्थना करने लगा ॥ १६ ॥

क्षमस्व मम दौर्ज्जन्यं कृपयस्व महामुने।
मया दैवहतेनायमपराधः कृतस्तव ॥ १७ ॥

मैंने कहा कि हे महामुने! आप मेरी इस दुष्टता को क्षमा कीजिए और मुझपर कृपा कीजिए; क्योंकि मैंने भाग्यहीनता के कारण आपका यह अपराध किया है ॥ १७ ॥

इति दीनवचः श्रुत्वा करुणार्द्रमना मुनिः।

प्रीणयन् श्लक्ष्णया वाचा कृपयन्मामुवाच सः १८

इस प्रकार मेरे दीन वचनों को सुन और करुणा से आर्द्रमन होकर उन मुनिजी ने कृपापूर्वक मुझे प्रसन्न करने के लिये मधुर वाणी से यों कहा ॥ १८ ॥

न जाने त्वां महाभाग पतङ्गाख्यं महामुनिम् ।
अज्ञात्वैव मया दत्तः शापस्तत् क्षन्तुमर्हसि १९

हे महाभाग ! तुम पतङ्ग नामक मुनि हो, यह बात हमने पहिले नहीं जानी थी, इसलिये अनजानते में हमने वह शाप तुम्हें देदिया, इसके लिये तुम हमको क्षमा करो ॥ १९ ॥

चिन्तां माकुरु देवर्षे भगवान् श्रीसुदर्शनः ।
इतोऽचिरेण कालेन भूमाववतरिष्यति ॥ २० ॥
संस्थापनाय धर्मस्य प्रशमायेतरस्य च ।
हरिभक्तप्रचाराय सर्वभूतहिताय च ॥ २१ ॥

हे देवर्षे ! तुम कुछ चिन्ता न करो, क्यों कि श्रीसुदर्शनभगवान् अबसे थोड़े ही दिनों के भीतर इस पृथ्वी पर धर्म के संस्थापन, अधर्म के नाश, हरिभक्ति के प्रचार और समस्त प्राणियों के कल्याण के लिये अवतार धारण करेंगे ॥ २० ॥ २१ ॥

एकदा प्रातरुत्थाय श्रीमान् स्नानाय यास्यति।
तत्पादस्पर्शनादेव हताशेषाघबन्धनः ।
दिव्यरूपधरो भूत्वा हरेर्लोकं प्रयास्यसि ॥२२॥

एक दिन प्रातःकाल के समय श्रीमान् निम्बार्क

भगवान् स्नान करने के लिये यहां आवेंगे। उस समय तुम उनके चरणों का स्पर्श करके समस्त पापों के बन्धनों से छुटकारा पाकर दिव्यरूप धारण करके वैकुण्ठ पधारोगे ॥ २२ ॥

इत्युक्त्वा मां स देवर्षिर्भगवान्कुंभसंभवः ।
स्नात्वाऽस्यां यमुनायां च जगाम स्वीयमाश्रमम्
अहं च दैववशतः प्रापितो गतिमीदृशीम् ।
उवासात्र बहूनब्दांश्चिन्तयन्त्वत्पदाम्बुजम् २४

इस प्रकार मुझसे कह और यमुना में स्नान करके वे देवर्षि भगवान् अगस्त्यमुनि अपने आश्रम को गए। और मैं दुर्भाग्यवश इस गति को पाकर आपके चरणारविन्दों का चिन्तन करता हुआ बहुत वर्षों से यहां पर पड़ा हुआ हूं ॥ २३ ॥ २४ ॥

नित्यमेव भवानत्रायाति स्नानाय किन्त्वहम् ।
दूर एव स्थितोऽपश्यं भवन्तं शापमोहितः॥२५॥

आप नित्य ही यहां पर स्नान करने के लिये आया करते हैं, किन्तु मैं शाप के मोह में ग्रस्त रहने के कारण दूर ही आपको देखा करता था ॥२५॥

अधुना त्वत्पदाम्भोजस्पर्शनाद्गतकल्मषः ।
यास्यामि पुनरावृत्तो रहितं पदमुत्तमम् ॥२६॥

आज आपके चरणारविन्दों के स्पर्श से समस्त पापों से छूटकर मैं उस परमपद को जाता हूं, जहां जाकर पुनः कोई संसार में नहीं आता ॥२६॥

इत्युक्त्वा चरणोपान्ते पतित्वा प्रेमविह्वलः ।
उत्थायाऽथ प्रतुष्टाव गुणकर्माणि वर्णयन् ॥२७॥

यों कह और प्रेम से बिह्वल हो, तथा श्रीनिम्बार्क भगवान् के चरणों में गिरकर, एवं फिर उठकर उनके गुणों और कर्मों का वर्णन कर के वह दिव्यपुरुष उनकी निम्नलिखित प्रकार से स्तुति करने लगा ॥२७॥

कञ्जाक्षं परमाचार्यं कम्बुग्रीवं महाभुजम् ।
तमालश्यामलाङ्गं तं वन्दे निम्बार्कमीश्वरम् २८

कमलनयन, कम्बुग्रीव, महाभुज, तमाल के समान श्यामवर्ण, परमाचार्य श्रीनिम्बार्कभगवान् को मैं प्रणाम करता हूं ॥ २८ ॥

किशोरं सुन्दरं रम्यं लावण्यादिगुणाकरम् ।
पीताम्बरधरं शान्तं वंदे निम्बार्कमीश्वरम् २९

किशोर अवस्थावाले, सुन्दरस्वरूप, रमणीय-कान्तिविशिष्ट, लावण्य आदि गुणों के आकर, पीताम्बरधारी और शान्त प्रकृति श्रीनिम्बार्क-भगवान् को मैं प्रणाम करता हूं ॥ २९ ॥

पक्वबिम्बाधरं सौम्यं सुकपोलं सुनासिकम् ।
सुकेशं चारुसर्वाङ्गं वंदे निम्बार्कमीश्वरम् ३०

पके बिम्ब के सदृश अधरोष्ठवाले, सौम्यरूप, सुन्दर कपोलों से युक्त, सुन्दर नासिकावाले, सुन्दर केशवाले और सर्वाङ्गसुन्दर श्रीनिम्बार्कभगवान् को मैं प्रणाम करता हूं ॥ ३० ॥

पीनोरस्कं निम्ननाभिं बलिवल्गुदलोदरम् ।
तुलसीदामशोभाढ्यं वंदे निम्बार्कमीश्वरम् ॥३१॥

जिनके वक्षस्थल पुष्ट, नाभि गभीर, त्रिवलीयुक्त उदर और कण्ठ तुलसीमाला से विभूषित हैं, उन श्रीनिम्बार्कभगवान् को मैं प्रणाम करता हूं ॥ ३१ ॥

रक्तपङ्कजपादाब्जं स्वास्तिकासनसंस्थितम् ।
ज्ञानमुद्राधरं धीरं वंदे निम्बार्कमीश्वरम् ॥३२॥

लाल कमल के समान चरणकमलवाले, स्वस्तिक आसन से विराजमान, ज्ञानमुद्राधारी, और धीर श्रीनिम्बार्कभगवान् को मैं प्रणाम करता हूं ॥३२॥

निम्बग्रामकृतावासं निम्बद्रुमलताश्रयम् ।
निम्बक्वाथैकभोक्तारं वंदे निम्बार्कमीश्वरम्

निम्बग्राम के निवासी, निम्बवृक्ष की लता के आश्रय और केवल निम्बक्वाथ के भोक्ता श्रीनिम्बार्कभगवान् को मैं प्रणाम करता हूं ॥ ३३ ॥

सर्वविद्याप्रदं सर्वकामदं दुःखनाशनम् ।
सच्चिदानन्दरूपं तं वंदे निम्बार्कमीश्वरम् ॥३४॥

समस्त विद्याओं के दाता, सब कामनाओं के पूर्णकर्त्ता, सम्पूर्ण दुःखों के दूर करनेवाले और सच्चिदानन्दस्वरूप श्रीनिम्बार्कभगवान् को मैं प्रणाम करता हूं ॥३४॥

कालातीतं भवातीतं दिव्यमाङ्गल्यविग्रहम् ।
कान्तातीतं गुणातीतं वंदे निम्बार्कमीश्वरम् ३५

संसारदुःखशमनाय सुदर्शनाय,
कृष्णात्मकाय शिवदाय नमो नमस्ते ॥३९॥

ज्ञानस्वरूप, ज्ञानरूपी वर के दाता, खलों के विनाशक, भक्ति महारानी के प्यारे, कलि-कल्मष के नाशकर्त्ता, भक्तों के त्रिविध पापों के दूर करने वाले, श्रीहरि के प्रिय, श्रीकृष्ण के चरण-कमल के मकरन्द के भ्रमर; शुद्धान्तःकरण, शुद्धशरीर, वरों के दाता, कालस्वरूप, काल के परिचालन करनेवाले, भय के अन्तक, संसार के दुःखों के दूर कर्त्ता, श्रीकृष्णस्वरूप, कल्याणकारक, श्रीसुदर्शन भगवान् को वारंवार प्रणाम है ॥३८-३९॥

यो राधावरपादपद्मयुगल-
ध्यानानुरक्तो मुनि-
र्भक्तिज्ञानविरागयोगकिरणै-
र्मोहान्धकारान्तकृत् ॥
लोकानामतएव निम्बघटितं,
चादित्यनामाजुगं ।
निम्बादित्यगुरुं तमेव मनसा,
वंदे गिरा कर्मणा ॥ ४० ॥

जो मुनिवर श्रीराधाकृष्ण के युगल-चरणारविन्दों के ध्यान में निरत रहते हैं, जो ज्ञान, वैराग्य और भक्ति के किरणों से मोहरूपी अन्धकार का नाश कर देते हैं, और लोगों में जो निम्ब के पर्याय-

वाची शब्दों के साथ साथ सूर्य के पर्यायवाचक शब्दों से युक्त नामों से विख्यात हैं, उन श्रीनिम्बादित्य गुरुवर को मैं मनसा, वाचा, कर्मणा प्रणाम करता हूं ॥ ४० ॥

पाषण्डद्रुमखण्डवतीक्ष्णदहनो,
बौद्धाद्रिखण्डाशनि-
श्चार्वाकाख्यतमोनिरासकमणि-
र्जैनेभमन्थाङ्कुशः।
मायावादमहाहिभङ्गविपति-
र्नैकुल्यचूडामणिः,
राधाकृष्णजयध्वजो विजयते,
निम्बार्कनामा मुनिः ॥४१॥

पाषण्डरूपी वृक्ष के दहन करने के लिये भयानक अग्नि के समान, बौद्धरूपी पर्वत के चूर्ण करने के लिये बज्र के सदृश, चार्वाकरूपी अन्धकार के दूर करने के लिये मणितुल्य, जैनरूपी गज के वश करने के लिए अङ्कुश जैसे, मायावाद रूपी सर्प के भङ्ग करने के लिये नकुड़-ऐसे, श्रीराधाकृष्ण के विजयध्वजरूप श्रीनिम्बार्क नामक मुनीश्वर सदैव विजय को प्राप्त हों ॥ ४१ ॥

यल्लीलया निखिलमेव चरीकरोति,
विश्वं विभोः स्वकलया च वरीवरोति।
मोमोक्ति जीवमशुभं च जरीहरीति,

निम्बार्कपादयुगलं प्रणतो नवीमि ॥४२॥

जिनकी लीला से सम्पूर्ण विश्व होते हैं, जो अपनी कला से समस्त विश्व को धारण किए हुए हैं, और जो सब जीवों के पातकों को दूर करके उनको मुक्त करते हैं, उन श्रीनिम्बार्कभगवान् के युगल चरणों में अति नम्रता से मैं प्रणत होता हूं ॥४२॥

हे निम्बार्क दयानिधे गुणनिधे,
हे भक्तचिन्तामणे।
हे आचार्य्यशिरोमणे मुनिगणै-
रामृग्यपादाम्बुज ॥
हे सृष्टिस्थितिपालकप्रभवन,
हे नाथमायाधिप।
हे गोवर्द्धनकन्दरालय विभो,
मां पाहि सर्वेश्वर ॥ ४३ ॥

हे निम्बार्क! हे दयानिधे! हे गुणनिधे! हे भक्तचिन्तामणे! हे आचार्य-शिरोमणे! हे मुनियों द्वारा ढूंढ़े हुए चरणकमल! हे सृष्टि-स्थिति-पालन के प्रधानभवन! हे नाथ! हे मायाधिप! हे गोवर्द्धन की कन्दरा में निवास करनेवाले! हेविभो! हे सर्वेश्वर! आप हमारी रक्षा कीजिए ॥ ४३ ॥

पतितं दुर्विनीतं मां देहेन्द्रियमनोमयम्।
ज्ञात्वाकुरुकृपांस्वामिन्छिन्धि पाशंचमोहजम्

देह, इन्द्रिय, और मन में डूबे हुए मुझे दुर्विनीत

और पतित जानकर, हेस्वामिन् ! आप मुझपर कृपा कीजिए और मेरे मोह से जायमान पाश को काट डालिए ॥ ४४ ॥

स्तवैस्तुत्वा नमस्कृत्य विमानमधिरुह्य सः ।
पश्यतां सर्वभूतानां जगाम पदमुत्तमम् ॥४५॥

इस प्रकार वह दिव्यपुरुष श्रीनिम्बार्कभगवान् की स्तवों से स्तुति कर और प्रणाम करके बिमान पर चढ़कर सब लोगों के देखते देखते परमपद को चला गया ॥ ४५ ॥

इत्याचार्यचरित्रस्य विश्रामे सप्तसंज्ञके ।
श्रीमन्निम्बार्कदेवस्य महिमा ह्यनुवर्णिता॥४६॥

इस प्रकार श्रीमदाचार्यचरित के सप्तम विश्राम में श्रीमान् श्रीनिम्बार्कभगवान् की महिमा गाई गई ॥ ४६ ॥

इतिश्रीश्रीमदाचार्यचरितस्य सप्तमो विश्रामः
समाप्तः ॥ ७ ॥

॥ २६८ ॥

श्रीश्रीकृष्णाय नमः ।

अथापरं महापुण्यं सर्वपापप्रणाशनम् ।
महर्षेश्चरितं दिव्यं निम्बार्कस्य शृणु द्विज ॥१॥

हे द्विज ! अब महर्षि श्रीनिम्बार्क भगवान् के सर्व-पाप-विनाशक, महापवित्र, अपर दिव्य चरित सुनो ॥ १ ॥

चरित्वा सर्वतीर्थानि त्रिःपरिक्रम्य भारतम् ।
उपदिश्य यथाकामं धर्मान्भागवतान् शुभान् २
स्वमाश्रमं समागत्य राधाकृष्णपरायणः ।
दुष्करं यन्नृणां तद्धि चकार परमं तपः ॥ ३ ॥

श्रीराधाकृष्ण के अनन्य-उपासक श्रीनिम्बार्क भगवान् सब तीर्थों में भ्रमण कर, भारतवर्ष की तीन परिक्रमा कर कल्याणकारक भागवतधर्म का भली भांति प्रचार कर, और फिर अपने आश्रम में आकर ऐसा महत्तप करते हुए, जो अन्य मनुष्यों को अत्यन्त दुष्कर है ॥ २ ॥ ३ ॥

तीर्थयात्राप्रसङ्गेन तस्य जातं यदद्भुतम् ।
चरितं तच्छृणु प्रेम्णा स्वाचार्यस्य महात्मनः ४

निजाचार्य, महानुभाव, श्रीनिम्बार्कभगवान् की तीर्थयात्रा के अवसर पर जो अद्भुत चरित हुए थे, उन्हें प्रेमपूर्वक सुनो ॥ ४ ॥

एकदा पर्य्यटल्लोकान् सेतुदर्शनमुत्तमम् ।
मन्यमानो जगामाशु दक्षिणाशां महातपाः ॥५॥

एक समय महातपस्वी श्रीनिम्बार्कभगवान् लोकों में पर्यटन करते हुए सेतुबन्ध के दर्शन की उत्तमकामना करके शीघ्र ही दक्षिणदिशा की ओर पधारे ॥ ५ ॥

तत्रतत्रोपसङ्क्रम्य तत्तद्देशनिवासिभिः ।
तांस्तानपूरयत्कामैर्भक्तिज्ञानविरक्तिभिः ॥६॥

उस यात्राप्रसङ्ग में जहां जहां आप पधारे, वहां वहां के निवासीजन आपके शरण में आए। तब आपने ज्ञान, वैराग्य और भक्ति के उपदेशद्वारा उन शरणागतों की मनोकामना पूरी कर दी ॥ ६ ॥

सेतोश्च दर्शनं कृत्वा गुर्ज्जरे भक्तिमुत्तमाम् ।
संस्थाप्य चागमद्यत्र नारायणसरः शुभम् ॥७॥

तदनन्तर सेतु का दर्शन कर और फिर गुर्जर (गुजरातप्रान्त) में श्रीहरिभक्ति का विधिपूर्वक प्रचार करके आप वहां पधारे, जहां कल्याणकारक श्रीनारायण-सरोवर है ॥ ७ ॥

चण्डीयुद्धे मृता ये वै राक्षसाश्च महीतले ।
कलौ जाता द्विजास्ते तु तुलसीरिक्तकण्ठकाः ॥८॥

पूर्वकाल में चण्डी (श्रीदुर्गा) के साथ युद्ध करके भूमण्डल में जितने राक्षस मारे गए थे, वे सब, कलिकाल आने पर दक्षिणदेश के ब्राह्मणकुल में उत्पन्न होते हुए; जिनके कण्ठ तुलसी की माला से रहित थे ॥ ८ ॥

आसुरीं योनिमापन्नाः कृष्णनिन्दनतत्पराः ।

चरन्ति नास्तिका लोके वहवो द्विजमानिनः ९

श्रीमदाचार्यचरण ने क्या देखा कि वे सब नास्तिक, जो आसुरी योनि में आकर जन्मे हैं, अपने को द्विज मानते हैं, और इधर उधर श्रीकृष्णभगवान् की निन्दा करते फिरते हैं ! ॥ ९ ॥

तेषामसुरत्वं यथा पद्मपुराणे—

राक्षसाः कलिमासाद्य जायन्ते ब्रह्मयोनिषु ।
निदन्ति तस्य भजनं कृष्णस्य परमात्मनः॥१०॥

वे ब्राह्मण असुर हैं,इसका प्रमाण पद्मपुराण में है। पुराणकार लिखते हैं कि कलिकाल के आने पर राक्षसलोग ब्राह्मणयोनि में जन्म लेते हैं, और वे परमात्मा श्रीकृष्णभगवान् के भजन की निन्दा किया करते हैं ॥ १० ॥

संस्थाप्य तत्र चक्रादिचिन्हं तद्देशवासिनाम् ।
त्याजयित्वासुरं भावं वैष्णवं धर्ममादिशत्॥११॥

श्रीमदाचार्यचरण ने यह दुर्दशा देखकर उन उन देशों के निवासियों के आसुर-भाव को दूर करके, तथा भगवान् के सुदर्शनचक्र आदि,—अर्थात् चक्र, शंख,गदा,पद्म आदि,—दिव्य आयुधों की स्थापना करके उन द्विजों को वैष्णवधर्म का उपदेश किया ॥ ११ ॥

पाषण्डान् शमयन् दुष्टान् दमयन् ह्लादयन् सतः ।
ग्राहयन् भगवद्धर्माल्लोकानुग्रहकाम्यया ॥१२॥

तीर्थयात्रामिषेणैव सम्प्राप्ते कुरुजाङ्गले ।
वायुर्ददीतिविख्यातस्तत्र वासमचीकरत् ॥१३॥

श्रीनिम्बार्क भगवान् पाषण्डों को शमन, दुष्टों को दमन और सज्जनों को प्रसन्न करते, लोगों के कल्याण की कामना से तीर्थयात्रा के व्याज से कुरुजाङ्गल देश के 'वायुर्ददी' नाम से विख्यात स्थान में जाकर वहां कुछ दिनो तक निवास करते हुए ॥१२-१३॥

अन्तः शाक्ता बहिः शैवाः सभायां वैष्णवा मताः
नानारूपधराः कौला विचरन्ति महीतले ॥१४॥

श्रीमदाचार्यचरणों ने देखा कि, वहांके लोग भीतर से तो शाक्त हैं, बाहर से शैव हैं और सभाओं में वैष्णवों का सा ढोंग रचते हैं ! ऐसे बहुरूपिये कौल (भ्रष्टाचारी) भूमण्डल में बिचरते हैं ! ' ॥ १४ ॥

शास्त्राचार्य्यविहीनाँस्तान्निरीक्ष्य करुणानिधिः
औदुंवरं पदा स्पृष्ट्वा तस्मै ज्ञानमुवाच ह ॥१५॥

करुणासागर श्रीनिम्बार्कभगवान् ने उन शास्त्राचार्यविहीन कौलों को देखकर निज शिष्य औदुम्बर ऋषि को चरण से स्पर्श कर के (१) उन्हें तत्त्वज्ञान का उपदेश दिया ॥ १५ ॥

औदुंवर इति ख्यात आचार्यस्त्वं भविष्यसि।
स्वनाम्ना संहितां ब्रूहि ह्यधुनैव ममाज्ञया ॥१६॥

(१) चरण के स्पर्श से अपना तेज औदुम्बर ऋषि के हृदय मे पहुंचा दिया,—यह भाव चरणस्पर्श का है ।

श्रीमदाचार्यचरणों ने कहा कि हे औदुम्बर! तुम इस (औदुम्बर) नाम के प्रख्यात आचार्य होगे, अतएव हमारी आज्ञा से तुम शीघ्र अपने नामानुसार एक संहिता (औदुम्बर-संहिता) की (१) रचना करो ॥१६॥

अविरुद्धं मतं स्थाप्य भक्तिमार्गं प्रवर्तय ।
येनेमे सकला लोकाः कृतार्थाः स्युर्विशेषतः॥१७॥

उस संहिता में अविरुद्ध मत का स्थापन करके तुम भक्तिमार्ग का प्रचार करो, जिससे ये सब लोग विशेष रूप से कृतार्थ होजायं ॥ १७ ॥

सोप्युत्थाय परिक्रम्य भक्तिनम्रेण चेतसा ।
दण्डवत्प्रणिपत्यास्तौत्स्वगुरुं पितरं प्रभुम्॥१८॥

श्रीमदाचार्यचरणों की ऐसी आज्ञा सुनकर औदुम्बरऋषि उठ खड़े हुए। फिर वे भक्तिनम्रचित्त से अपने पिता, गुरु, एवं प्रभु श्रीनिम्बार्कभगवान् की परिक्रमा कर तथा दण्डवत्प्रणाम करके श्रीगुरुदेव की स्तुति करने लगे ॥ १८ ॥

श्रीमतेः सर्वविद्यानां प्रभवाय सुब्रह्मणे ।
आचार्याय मुनीन्द्राय निम्बार्काय नमो नमः१९

श्रीमान्, सब विद्याओं के उत्पत्ति-स्थान, ब्रह्मस्वरूप, आचार्य, मुनीन्द्र, श्रीनिम्बार्कभगवान्

(१) जिन सज्जनों के पास "औदुम्बरसंहिता" हो, वे कृपाकर उसे शीघ्र "सुदर्शनप्रेस-वृन्दावन" के अध्यक्ष के पास भेज दें तो भाषाटीका के साथ वह छाप दी जाय और भेजनेवाले सज्जन का नाम अमर होजाय, तथा सम्प्रदाय का महोपकार भी हो।

को वारंवार प्रणाम है ॥१९॥

निम्बादित्याय देवाय जगज्जन्मादिहेतवे ।
सुदर्शनावताराय नमस्ते चक्ररूपिणे ॥ २० ॥

देव, जगत् के जन्मादि के हेतु, श्रीसुदर्शनावतार, चक्ररूपी श्रीनिम्बार्कभगवान् को वारंवार प्रणाम है ॥ २० ॥

नमः कल्याणरूपाय निर्दोषगुणशालिने ।
प्रज्ञानघनरूपाय शुद्धसत्त्वाय ते नमः ॥ २१ ॥

कल्याणस्वरूप, निर्दोषगुणों के आकर, प्रज्ञानघनरूप, शुद्ध सत्त्व, श्रीनिम्बार्कभगवान् को वारंवार प्रणाम है ॥२१॥

सूर्यकोटिप्रकाशाय कोटीन्दुशीतलाय च ।
शेषानिश्चिततत्त्वाय तत्त्वरूपाय ते नमः ॥ २२ ॥

कोटि सूर्यों के समान प्रकाशमान, कोटिचन्द्रों के समान शीतल, शेषभगवान् से भी जिनका तत्त्व निश्चित न हो सका, ऐसे तत्त्वस्वरूप श्रीनिम्बार्कभगवान् को वारंवार प्रणाम है ॥ २२ ॥

विततायं पवित्राय नियमानन्दरूपिणे ।
प्रवर्त्तकाय शास्त्राणां नमस्ते शास्त्रयोनये २३

वितत, पवित्र, नियमानन्दरूप, शास्त्रों के प्रवर्त्तक तथा शास्त्रयोनि श्रीनिम्बार्कभगवान् को वारंवार प्रणाम है ॥ २३ ॥

वसतां नैमिषारण्ये मुनीनां कार्यकारिणे ।

तन्मध्ये मुनिरूपेण वसते प्रभवे नमः ॥ २४ ॥

नैमिषारण्य में वास करनेवाले मुनियों के कार्यों के कर्त्ता, उन मुनियों के मध्य में विराजमान महाप्रभु श्रीनिम्बार्कभगवान् को वारंवार प्रणाम है ॥ २४ ॥

लीलां पश्यति यो नित्यं कृष्णस्य परमात्मनः ।
निम्बग्रामनिवासाय विश्वेशाय नमो नमः ॥२५॥

जो परमात्मा श्रीकृष्ण की लीलाओं को नित्य ही देखा करते हैं, उन निम्बग्राम के निवासी विश्वेश्वर श्रीनिम्बार्कभगवान् को वारंवार प्रणाम है ॥ २५ ॥

तप्तमुद्रास्थापकाय द्वारावत्यां युगे युगे ।
निम्बार्काय नमस्तस्मै दुष्कृतामन्तकारिणे ॥२६॥

प्रतियुग में श्रीद्वारिकापुरी में तप्तमुद्रा धारण करने के व्यवस्थापक(१) और दुराचारियों के अन्तक श्रीनिम्बार्कभगवान् को वारंवार प्रणाम है ॥ २६ ॥

य इदं पठति स्तोत्रं निम्बादित्यस्य बुद्धिमान् ।
तस्य क्वापि भयं नास्ति तमसेव दिवामणेः ॥२७॥

जो बुद्धिमान् श्रीनिम्बार्कभगवान् के इस स्तोत्र को पढ़ते हैं, उनको कहीं भी भय नहीं होता; जैसे सूर्य के रहते अन्धकार का भय नहीं रहता ॥ २७ ॥

स्तोत्रेणानेन संस्तूय विष्णुचक्रं सुदर्शनम् ।
स्वनाम्ना संहितां चक्रे यत्र धर्मः सनातनः ॥२८॥

(१) इस सम्प्रदाय में "शीतलमुद्रा" का विधान है। तप्तमुद्रा का धारण करना श्रीद्वारकापुरी में विहित है। उसमें भी लेने की व्यवस्था इच्छानुसार ही की गई है।

इस स्तोत्र से विष्णुचक्र श्रीसुदर्शनभगवान् की स्तुति करके श्रीऔदुम्बराचार्य ने अपने नामानुसार एक संहिता (औदुम्बरसंहिता) रची, जिसमें सनातनधर्म की विशद व्याख्या की गई है ॥ २८ ॥

श्रीनिम्बार्कोऽपि भगवानेवमौदुंवराभिधम् ।
अनुगृह्य मुनिं भूमौ विचचार सतां गतिः ।२९।

इस प्रकार सज्जनों के आश्रय श्रीनिम्बार्क भगवान् औदुम्बरनामक मुनि पर अनुग्रह करके पृथ्वी में विचरण करते हुए ॥ २९ ॥

स्थापयन्वैष्णवान्धर्मान्नष्टप्रायान् सनातनान् ।
नैमिषारण्यके प्रागाद् ब्रह्मर्षिगणसेविते॥३०॥

नष्टप्राय, सनातन, वैष्णवधर्म का स्थापन करते हुए श्रीनिम्बार्कभगवान् ब्रह्मर्षियों से सेवित नैमिषारण्य में पधारे ॥ ३० ॥

दृष्ट्वा तद्वासिनः सर्वे शौनकाद्या महर्षयः ।
प्रोचुः प्राञ्जलयः प्रीत्या हर्षगद्गदया गिरा॥ ३१ ॥

नैमिषारण्य के निवासी शौनक आदि सम्पूर्ण महर्षियों ने श्रीनिम्बार्क भगवान् का दर्शन करके प्रीतिपूर्वक हाथ जोड़कर गद्गदवाणी से इस प्रकार कहा ॥ ३१ ॥

अहोभाग्यमहोभाग्यं नैमिषारण्यवासिनाम् ।
यदाशया तपस्तप्तं सोऽयं दर्शनगोचरः ॥३२॥

नैमिषारण्यवासियों के अहोभाग्य हैं कि जिस

अभिप्राय से यहांके निवासियों ने तपस्या की थी, वह आज पूरी हुई; अर्थात् आपके दर्शन हुए ॥ ३२ ॥

वयं तेऽनुग्रहेणैव ह्यत्र सत्राय दीक्षिताः ।
दानवा बहवश्चात्र विघ्नान् कुर्वन्ति नित्यशः ॥३३॥

हे भगवन् ! हमलोग आपके अनुग्रह के ऊपर निर्भर करके ही यहां पर यज्ञ में दीक्षित हुए हैं; किन्तु यहां पर नित्य ही बहुतेरे दानव यज्ञ में विघ्न करते हैं ॥३३॥

यदर्थमवतीर्णोसि भूतलेऽस्मिन् हरिप्रिय !
धर्मान् भागवतान् ब्रूहि तान्यैः संप्रीयते हरिः ३४

हे हरिप्रिय ! इस भूमण्डल में जिस लिये आप अवतीर्ण हुए हैं, वह कीजिए; अर्थात् उस भागवत धर्म का वर्णन कीजिए जिससे श्रीहरिभगवान् अत्यन्त प्रसन्न होते हैं ॥ ३४ ॥

ऋषिभिर्बहुधा गीतं छंदोभिर्विविधैः पृथक् ।
सर्वतः सारमादाय संक्षेपाद्ब्रूहि नः प्रभो ॥३५॥

. जिस भागवत धर्म का गुणगान अनेक महर्षियों ने विविध छन्दों में पृथक् पृथक् किया है, उन सभों के सारभाग को ग्रहण करके हमलोगों के आगे संक्षेप में वर्णन कीजिए ॥ ३५ ॥

इति श्रुत्वा वचस्तेषां नैमिषारण्यवासिनाम् ।
तत्सर्वं वर्णयामास विस्तरात्सर्वतत्त्ववित् ॥३६॥
ऋषिभिर्ये कृताः प्रश्ना देहात्मविषयाः पृथक् ।

समाधानाय तेषां वै न्यवसत्कतिचित्समाः॥३७॥

इस प्रकार नैमिषारण्य के निवासी मुनियों के वचन को सुनकर सर्वतत्त्ववित् श्रीनिम्बार्क ने बिस्तार पूर्वक उनके आगे सनातनधर्म की व्याख्या की; अर्थात् उन ऋषियों ने जो देहात्मविषयक प्रश्न किए थे, उन प्रश्नों के उत्तर देकर उन मुनियों के समाधान करने के लिये श्रीनिम्बार्कभगवान् कुछ वर्षों तक नैमिषारण्य में रहे ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

तत्र गौरमुखादिभ्यः परं तत्त्वं प्रकाश्य च।
वदर्याश्रमके प्रागाद् द्वापरान्त इति श्रुतम्॥३८॥

ऐसा सुनने में आया है कि वहांपर गौरमुख आदि महर्षियों को परम तत्त्व का उपदेश देकर श्रीनिम्बार्कभगवान् द्वापरान्त में वदर्याश्रम को पधारे थे ॥ ३८ ॥

निवसन् तत्र व्यासेन साकं च कतिचित्समाः।
चकार ब्रह्मसूत्रस्य व्याख्यानं प्रथमं मुनिः॥३९॥

वहां (वदर्याश्रम में) श्रीवेदव्यास महामुनि के साथ कई वर्षों तक रहकर महामुनि श्रीनिम्बार्कभगवान् ने वादरायण (वेदव्यास) रचित "ब्रह्मसूत्र" का सर्वप्रथम भाष्य बनाया था ॥ ३९ ॥

धरया प्रार्थितः कृष्णः प्रेषयामास चोद्धवम्।
निम्बादित्यस्तपोरूढः प्रेषणीयो निजस्थले॥४०॥
पुरा गोवर्द्धने रम्ये मल्लीलादर्शनोत्सुकः।

अवात्सीदधुना सोऽस्ति वदर्याश्रममण्डले ॥४१॥

पृथ्वी की प्रार्थना से श्रीभगवान ने उद्धवजी को यह कह कर वदर्याश्रम की ओर भेजा कि, 'निम्बादित्य आजकल बदरी खण्ड में तपस्या कर रहे हैं, उन्हें तुम निज स्थान (श्रीवृन्दावन-निम्ब-ग्राम) को भेजदो ।' क्योंकि पहिले वह (निम्बार्क) हमारी लीला देखने की उत्कण्ठा से निज स्थान श्रीगोवर्द्धन (वृन्दावन) में रहते थे, परन्तु आजकल बदरीखण्ड में हैं ॥ ४० ॥ ४१ ॥

इति श्रुत्वा वचस्तस्य कृष्णस्य परमात्मन:।
गत्वा तत्रोद्धवः सर्वं निम्बार्कायाब्रवीदिदम् ४२

परमात्मा श्रीकृष्ण के ऐसे बचन को सुनकर उद्धवजी वदर्याश्रम को गए और वहां जाकर उन्होंने श्रीनिम्बार्काचार्य से यों कहा ॥ ४२ ॥

गच्छ निम्बार्क शीघ्रं त्वं ब्रजं कृष्णाज्ञयाऽधुना ।
विधातुं वैष्णवं मार्गं संप्रदायं पुरातनम्॥४३॥
कलिनाऽधर्ममित्रेण नष्टप्रायं दिने दिने ।
कुरु कार्यं हरेः सर्वं भक्तिभावसमन्वितम् ॥४४॥

हे निम्बार्क ! अब तुम अतिशीघ्र श्रीकृष्ण की आज्ञा से पुरातन सम्प्रदाय-वैष्णवमार्ग का विधान करने के लिये ब्रज को जाओ । क्यों कि अधर्म के मित्र कलियुग के कारण दिन दिन वह मार्ग नष्टप्राय होरहा है । इसलिये वहां जाकर तुम

भक्ति-युक्त हरि के कार्यों का सम्पादन करो ॥४३॥४४॥

निम्बादित्योऽपि तद्वाक्यामृतपानपरिप्लुतः ।
निम्बग्रामं समासाद्य तत्राथैव चकार ह ।।४५॥

श्रीउद्धवजी के बचनामृत के पान करने से तृप्त होकर श्रीनिम्बार्कभगवान् निम्बग्राम में आकर श्रीभगवान् की आज्ञा का यथोचित पालन करतेहुए; अर्थात् बिधिपूर्वक भागवतधर्म का प्रचारकरते हुए ४५

सदा नन्दादयस्तत्र विप्रा भागवतोत्तमाः ।
आजग्मुरुत्सुका हृष्टास्तुष्टुवुः स्वगुरुं प्रभुम्।।४६।।

निम्बग्राम में श्रीनिम्बार्कभगवान् के समीप श्रीनन्दादिक गोप,तथा प्रधान प्रधान भगवद्भक्त जन परमोत्साहित होकर नित्यही आते और अत्यन्त प्रसन्न होकर वे सब अपने गुरू और प्रभु श्रीनिम्बार्क भगवान् की स्तुति किया करते थे ॥ ४६ ॥

परमपुरुषमाद्यं सच्चिदानन्दरूपं,
चिदचिदखिलविश्वं भासया भासयन्तम्।
विधिशिवसुरराजैर्वन्दितांघ्रिं शिरोभिः,
शरणमुपगतोऽहं माधवं गोपवेषम्।।४७।।

(उनकी स्तुति,अर्थात् स्तोत्र निम्नलिखित है)

परमंपुरुष, सबके आदि,सच्चिदानन्दस्वरूप,चित् (जीव) और अचित (माया) मय सम्पूर्ण विश्व को अपने तेज से प्रकाशित करनेवाले, ब्रह्मा, शिव और इन्द्र के मस्तकों से वन्दित-चरण-कमल,गोपवेषधारी,

श्रीमाधवभगवान् के शरण में हम प्राप्त होते हैं ॥४७॥

जगदभयदमूर्त्तिर्वेदपद्मप्रकाशी,
सदमितगुणसिंधुर्हेयशून्यः परेशः ।
परमपदविहारः सुन्दरो रुक्मवर्णो,
मम हृदयनिवासं निम्बभानुः करोतु ॥४८॥

जगत् को अभय देनेवाले स्वरूप, वेदरूपी पद्म के प्रकाशक, अमित सद्गुणों के समुद्र, हेयगुणों से रहित, परेश, श्रीभगवान् के चरणारबिन्द में बिहार करनेवाले, सुन्दर, श्यामस्वरूप, श्रीनिम्बार्कभगवान् हमारे हृदय में निवास करें ॥ ४८ ॥

नलिनरुचिरपादः कृष्णपादाब्जचित्तः,
परमकरुणमूर्त्तिर्ब्रह्मरुद्रादिसेव्यः ।
व्रजपतिकरगस्तद्धाममार्गानुदर्शी,
मम हृदयनिवासं निम्बभानुः करोतु ॥४९॥

कमल के समान सुन्दर चरणवाले, श्रीकृष्ण के चरणारविन्द में चित्त लगानेवाले, परम कारुणिक, ब्रह्मा, महादेव आदि देवताओं से सेव्य, श्रीहरि के कर कमल में बिराजमान, अर्थात् सुदर्शनचक्र, और श्रीभगवद्धाम को प्राप्त करानेवाले श्रीनिम्बार्कभगवान् हमारे हृदय में निवास करें ॥ ४९ ॥

परभजनलतानां पोषकश्चन्द्रशीलः,
स्वमतपरमबोधी तत्त्वदीपप्रकाशी ।
परमतगिरिबज्रः काम्यकर्माहितार्क्ष्यो,

मम हृदयनिवासं निम्बभानुः करोतु॥५०॥

श्रीकृष्ण की भजनरूपिणी लता को चन्द्रमा के समान पोषण करनेवाले, श्रीभगवान के श्रेष्ठ सिद्धान्तों को समझानेवाले, तत्त्वरूपी दीप के प्रकाशक, पर मत रूपी पर्वत के लिये वज्र के समान, काम्य-कर्म रूपी सर्प के लिये गरुड़ के समान, श्रीनिम्बार्क-भगवान् हमारे हृदय में निवास करें ॥ ५० ॥

मुनिवरहितकारी नैमिषारण्यवासी,
मुनिवरकृतबोधः श्रीनिवासोपदेष्टा ।
भवरुजहरणे यो निम्बतुल्यः स देवो,
मम हृदयनिवासं निम्बभानुः करोतु॥५१॥

मुनिवर अर्थात् श्रीवेदव्यास (ब्रह्मसूत्र के व्याख्यान करने के कारण) के हितकारी, नैमिषारण्य के ऋषियों पर कृपा करके वहां पर कुछ काल तक निवास करनेवाले, मुनिवर अर्थात् श्रीनारदजी ने जिनको बोध कराया अर्थात् दिव्यज्ञान प्रदान किया, श्रीश्रीनिवासाचार्य के उपदेष्टा, भवरूपी रोग के हरण करने के लिये जो निम्ब के तुल्य हैं, वे देव श्रीनिम्बार्कभगवान् हमारे हृदय में निवास करें ॥५१॥

भवजलधिनिमग्नं जीवजातं निरीक्ष्य,
धृतगुरुवरमूर्त्तिः शास्त्रतत्त्वं दिशन्वन् ।
सुरनरमुनिवृन्दैः स्तूयमानांघ्रिपद्मो,
मम हृदयनिवासं निम्बभानुः करोतु ५२

भवसागर में डूबे हुए समस्त जीवधारियों को देखकर शास्त्र के तत्त्व को विस्तार करने के लिये गुरुवर मूर्त्ति को जिन्होंने धारण किया और जिनके चरणारविन्दों की स्तुति सुर, नर और मुनियों के समूह किया करते हैं, वे श्रीनिम्बार्कभगवान् हमारे हृदय में निवास करें ॥५२॥

जगति निगमपद्मं फुल्लयन् भानुरूपः,
कुमतितिमिरजालं नाशयन्स्वीयदीप्त्या ।
स्वपदनलिनभृङ्गान् हर्षयन् ज्ञानगन्धै-
र्मम हृदयनिवासं निम्बभानुः करोतु ॥५३॥

संसार में वेदरूपी कमल के उत्फुल्ल करने के लिये सूर्य के समान, तथा अपने तेज से कुमतिरूपी अन्धकार के विनाशकर्त्ता, निजचरणकमल के मधुकरों अर्थात् भगवद्भक्तों को ज्ञानरूपी सुगन्धि से हर्षित करनेवाले श्रीनिम्बार्कभगवान् हमारे हृदय में निवास करें ॥५३॥

सदसदखिलविश्वं जायते यत्परस्मात् ,
परमितगुणयुक्तं नामरूपैर्विभक्तम् ।
विटपिन इव वीजान्नामरूपादिभाजो,
मम हृदयनिवासं निम्बभानुः करोतु ॥५४॥

जिस नामरूपादिभाजी परतत्त्व से परमित-गुणों से युक्त और नाम रूप आदि से विभक्त यह संपूर्ण सद् और असद् विश्व—बीज से वृक्ष के समान—उत्पन्न होता है, वह श्रीनिम्बार्कभगवान् हमारे हृदय निवास करें ॥ ५४ ॥

चिदचिदखिलविश्वं स्वात्मकं पाति विष्णु-
निखिलचिदचिदीशः सूर्यकोटिप्रकाशः ।
प्रकृतिपुरुषभिन्नाभिन्नरूपः स्वभावान्,
मम हृदयनिवासं निम्बभानुः करोतु ॥५५॥

स्वभाव ही से प्रकृति और पुरुष से भिन्नाभिन्न रूप, करोड़ों सूर्यों के समान प्रकाशमान, जो ईश विष्णु अखिल स्वात्मक चिद् अचिद् विश्व का पालन करते हैं, वे श्रीनिम्बार्कभगवान् हमारे हृदय में निवास करें ॥ ५५ ॥

त्वयि परमस्वरूपे शास्त्रयोनौ ह्यनन्ते,
सरित इव समुद्रे नामरूपैर्विहीनाः ।
मधुनि रस इवास्तं याति विश्वं सदादौ,
मम हृदयनिवासं निम्बभानुः करोतु ॥५६॥

आदि में सदैव, अर्थात् प्रतिकल्प में, जिन अनन्त, शास्त्रयोनि और परम स्वरूप आप में— मधु में रस के समान तथा समुद्र में नदियों के समान— नामरूपविहीन यह समस्त विश्व अस्त रहता अर्थात् छिपा रहता है, वे श्रीनिम्बार्कभगवान् हमारे हृदय में निवास करें ॥ ५६ ॥

परमपुरुषविष्णोर्निम्बभानोः कृपालोः,
कृतमिदमतिगुह्यं स्तोत्ररूपं रहस्यम् ।
हरिगुरुचरणाब्जध्यानतत्त्वप्रकाशी,
मम हृदयनिवासं निम्बभानुः करोतु ५७

परमपुरुष, साक्षात् श्रीविष्णु, कृपालुश्रीनिम्बार्क भगवान् का यह अतिगुह्य स्तोत्र रूप रहस्य महानुभावों के द्वारा किया गया है । अतएव श्रीहरि औरगुरुदेव के चरणारविन्द के ध्यान तत्त्व के प्रकाशक श्रीनिम्बार्कभगवान् हमारे हृदय में निवासकरें ॥५७॥

संसाररोगशमने खलु निम्बवद्यो,
हार्द्दान्धकारहरणेऽर्कवदेवयश्च ।
श्रीकृष्णपादपरिचारणतुष्टचेता,
निम्बार्कदेशिकवरः स हि मे गतिः स्यात्५८

संसाररूपी रोग के दूर करने में जो निश्चय ही निम्ब के तुल्य हैं और हृदय के अन्धकार के दूर करने में जो सूर्य के समान हैं, वे श्रीकृष्ण की चरणपरिचर्या से सन्तुष्ट श्रीनिम्बार्काचार्यवर्य ही हमारी गति अर्थात् आधार हैं ॥ ५८ ॥

इति स्तुत्वा स्तवैर्दिव्यैः श्रीनिम्बार्कं मुनीश्वरम्।
सदा नन्दादयः सर्वे प्रणेमुर्जातकौतुकाः ॥५९॥

इस प्रकार सदैव कौतुकयुक्त सम्पूर्ण श्रीनन्दादिक गोप और प्रधान प्रधान भगवद्भक्त विप्रजन, दिव्य स्तोत्रों से श्रीनिम्बार्कमुनीश्वर की स्तुति करके उन्हें प्रणाम किया करते थे ॥ ५९ ॥

इत्येवं श्रीमदाचार्यः श्रीनिम्बार्को महामुनिः ।
विजित्य च दिशः सर्वास्त्रिः परिक्रम्य भारतम् ६०
धर्मं भागवतं स्थाप्य देशे देशे जने जने ।

ब्रह्मसूत्रस्य व्याख्यानं कृत्वा सर्वाङ्गसुन्दरम् ६१
निम्बग्रामे स्थितो नित्यं हरिध्यानपरायणः ।
चकार चाप्रमेयात्मा तपः परमदुष्करम् ॥ ६२ ॥

इस प्रकार अप्रमेयात्मा, हरिध्यान परायण, महामुनि, श्रीमदाचार्यवर्य श्रीनिम्बार्कभगवान् सब दिशाओं को जीत और भारतवर्ष की तीन परिक्रमा कर, तथा प्रत्येक देश और प्रत्येक मनुष्य के हृदय में सनातन भागवत धर्म का स्थापन कर, एवं ब्रह्मसूत्र का सर्वाङ्गसुन्दर व्याख्यान करके, निम्बग्राम में नित्य ही स्थित रहकर परमदुष्कर तप को करते हुए ॥ ६० ॥ ६१ ॥ ६२ ॥

मंगलं श्रीरमाकान्तः सच्चिदानन्दविग्रहः ।
मंगलं नियमानन्दो ज्ञानभक्तिप्रदोनृणाम् ६३

सच्चिदानन्दस्वरूप श्रीरमाकान्त मङ्गल करें और मनुष्यों को ज्ञान तथा भक्ति के देने वाले श्रीनियमानन्द अर्थात् श्रीनिम्बार्कभगवान् मङ्गल करें ॥ ६३ ॥

इत्याचार्यचरित्रस्य विश्रामे ह्यष्टमे मया ।
नियमानन्ददेवस्य महिमा ह्यनुवर्णिता ॥६४॥

इस प्रकार श्रीआचार्य चरित के आठवें विश्राम में हमने श्रीनियमानन्ददेव अर्थात् श्रीनिम्बार्क भगवान् की महिमा का वर्णन किया ॥ ६४ ॥

इति श्रीमदाचार्यचरितस्याष्टमो विश्रामः समाप्तः ॥८॥

॥ ३३० ॥

श्रीश्रीकृष्णाय नमः ।

हरिकरकृतवासं श्वेतकुन्देन्दुभासं,
निखिलजननिवासं वेदपद्मप्रकाशम् ।
जगदभयदपादं सत्यकार्येऽविवादं,
कृतमुनिवररूपं भक्तभूपं प्रपद्ये ॥ १ ॥

श्रीहरि के हस्तकमल में निवास करनेवाले, श्वेत कुन्द और चन्द्र के समान गौर वर्ण, सम्पूर्ण जीवों के निवासस्थान, वेदरूपी पद्म के प्रकाशक, समस्त संसार को अभय देने में समर्थ, सत्यकार्यों में निश्चित मति, मुनिवर रूप तथा भक्तवृन्दों के भूप श्रीश्रीनिवासाचार्यवर्य के शरण में हम प्राप्त होते हैं ॥ १ ॥

श्रीनिम्बार्ककुलाम्भोधावासीद्रत्नशिरोमणिः ।
वासुदेवांशसंभूतः पाञ्चजन्यो वरप्रदः ॥ २ ॥
माघशुक्लस्य पञ्चम्यां नक्षत्राणां शुभोदये ।
सुदर्शनाश्रमे क्षेत्रे प्रादुर्भूतो दिनोदये ॥ ३ ॥

श्रीनिम्बार्ककुलरूपी सागर में उत्पन्न रत्नशिरोमणि, श्रीवासुदेवभगवान् के अंश से जायमान, श्रीपाञ्चजन्यावतार, वरदाता, भाष्यकार भगवान् श्रीश्रीनिवासाचार्य माघ शुक्ला पञ्चमी के दिन, शुभ नक्षत्रों के उदय में श्रीसुदर्शनाश्रम (श्रीनिम्बग्राम) क्षेत्र में प्रातःकाल के समय प्रकट होते हुए ॥ २ ॥ ३ ॥

द्विजत्वाधिगतः सोऽपि सन्यस्य गृहसम्पदः ।
दिग्जयाय मतिं चक्रे स्वनाथं हृदि चिन्तयन् ॥ ४ ॥

वे अर्थात् श्रीश्रीनिवासाचार्य द्विजत्व अर्थात् द्विजाति-संस्कार को प्राप्त हो और गृह की सम्पत्तियों को त्याग करके निज नाथ श्रीनिम्बार्कभगवान् को हृदय में चिन्तन करते करते दिग्विजय की इच्छा करते हुए ॥४॥

शैवान्पाशुपतान्शाक्तान्नास्तिकान्बौद्धसंश्रयान्
विजित्य मथुरामेत्य निम्बग्राममुपाविशत् ॥५॥

इस प्रकार वे दिग्विजय को पधार और शैव, पाशुपत, शाक्त, नास्तिक तथा बौद्ध आदिकों को जीत कर मथुरा को लौट आए और वहांसे फिर निम्बग्राम में लौट गए ॥५॥

गुरुं सुश्रूषयामास श्रीनिम्बार्कं महामुनिम् ।
तस्य सेवारतो नित्यं भक्त्याऽविचलया स्वया ६

वे निम्बग्राम में लौट के आकर निजगुरु श्रीनिम्बार्कमहामुनि की सुश्रूषा करने लगे। वे अपनी अविचल भक्ति से बराबर निजगुरुदेव की सेवा में तत्पर हुए ॥ ६ ॥

अथास्य च पितुर्वन्द्यं चरितं परमाद्भुतम् ।
ब्रवीमि प्रथमं पश्चाद्वक्ष्ये पुत्रस्य तस्य च ॥७॥

अब इन (श्रीनिवासाचार्य) के पिता का परमाद्भुत और वन्दनीय चरित्त पहिले कहते हैं। इसके पश्चात् उनके पुत्र अर्थात् श्रीनिवासाचार्य का चरित कहेंगे ॥ ७ ॥

आसीत्कश्चित्पुरा विद्वान् स्मार्त्तधर्मरतः सदा।
नानाशास्त्रपुराणज्ञो तर्कशास्त्रविचक्षणः ॥८॥

पूर्वकाल में, सदा स्मार्त्त धर्म में रत एक विद्वान् होते हुए; जो अनेक पुराणों के जाननेवाले और तर्क शास्त्र के अच्छे ज्ञाता थे ॥ ८ ॥

आचार्यपाद इत्याख्याख्यातश्च भुवि सर्वतः।
कृत्वा दिग्विजयं सोऽपि निम्बग्राममुपागतः९

वे संसार में सर्वत्र "आचार्यपाद" इस नामसे विख्यात थे। दैवसंयोग से एक समय दिग्विजय करते हुए वे निम्बग्राम में आए ॥ ९ ॥

शिष्यैरसंख्यैः सहितो ग्रन्थयानशतैर्वृतः।
आगत्योवाच निम्बार्कं तपश्चर्यापरायणम् १०

उस समय उन (आचार्यपाद) के साथ असंख्य शिष्य और सैंकड़ों गाड़ी भरे ग्रन्थरत्न थे सो वे आश्रम में आकर तपस्या में रत श्रीनिम्बार्कभगवान् से यों बोले ॥ १० ॥

सस्त्रीकोऽहं मुने प्राप्तश्चाश्रमे तेऽतिथिः प्रभो!
आज्ञां देहि निवासार्थं श्वो गमिष्यामि कुत्रचित्

हे प्रभो! हेमुने! हम निज भार्या के सहित अतिथि रूप से आप के आश्रम में आपहुंचे हैं; इसलिये हमें आप आज इस आश्रम में निवास करने की आज्ञा दीजिए। प्रातःकाल हम यहांसे कहीं चले जायंगे ॥ ११ ॥

अन्तर्वत्नी च मे पत्नी रात्रिरेषा समागता ।
इदानीं क्व गमिष्यामि तस्मात्स्थानं दद प्रभो १२

हमारी पत्नी गर्भवती है और यह रात्रि का समय हो आया, ऐसी अवस्था में इस समय हम कहां जायं; अतएव हे प्रभो ! रात्रिभर निवास करने के लिये हमें स्थान प्रदान कीजिए ॥ १२ ॥

इति श्रुत्वातिथेर्वाक्यमोमित्युक्त्वाब्रवीत्प्रभुः ।
तिष्ठातिथ्यं गृहाणाशु सानुगस्त्वं मदर्पितम् १३

इस प्रकार अतिथि के बचन को सुनकर प्रभु श्रीनिम्बार्क ने "अच्छा" कहकर फिर यों कहा—अच्छा, तुम यहां निवास करो और हमारे दिए हुए आतिथ्य को अति शीघ्र अपने अनुचरों के साथ ग्रहण करो ॥१३॥

इति श्रुत्वा मुनेर्वाक्यं श्रीनिम्बार्कस्य धीमतः ।
स उवाचातिथिर्विद्वान् पश्य पश्याधुना मुने १४
सायंकालोऽयमस्माकं भोज्यानर्हक्षणं प्रभो !
प्रातःकाले गृहीष्यामि चातिथ्यं तव सुव्रत १५

इस प्रकार धीमान् श्रीनिम्बार्कमहामुनि के वचन को सुनकर उस विद्वान् अतिथि ने यों कहा,—हेमुने ! देखिए,देखिए,—हेप्रभो ! यह सायंकाल का समय है, अतएव यह समय हमलोगों के भोजन के लिये वर्जित है। अतएव हे सुव्रत ! हम आज इस समय आपके आतिथ्य को ग्रहण न करेंगे; हां प्रातःकाल आपके आतिथ्य को अवश्यमेव गृहण करेंगे ॥ १४ ॥ १५ ॥

इति श्रुत्वातिथेर्वाक्यं प्रहस्य च महाप्रभुः ।
तमुवाच महातेजा क्वास्तं यातोऽधुना रविः१६

इस प्रकार अतिथि के वचनों को सुन कर महातेजा एवं महाप्रभु श्रीनिम्बार्कभगवान् ने हँस कर उस अतिथि से यों कहा,—"अभी सूर्य कहां अस्त हुए हैं?" ॥ १६ ॥

श्रुत्वा मुनिवचो विद्वान् दृष्ट्वा निम्बे तथा रविम्
महाश्चर्यं महाश्चर्यमित्युक्त्वा विरराम ह १७

महामुनि श्रीनिम्बार्कदेव के ऐसे बचन को सुन तथा निम्बवृक्ष के ऊपर सूर्य को देखकर वह विद्वान् अतिथि,—"महा आश्चर्य !! महा आश्चर्य !!!" यों कहकर चुप होगए ॥ १७ ॥

निम्बक्षोणीरुहे दृष्ट्वा भास्वंतं चातिथिस्तदा ।
निम्बार्केण समानीतं स्वादु भैक्ष्यं बुभोज सः १८

फिर तो उस अतिथि ने निम्बवृक्ष के ऊपर सूर्य को देखकर श्रीनिम्बार्क भगवान् के दिए हुए सुस्वादु भोजन को अपने अनुचरों के सहित ग्रहण किया, अर्थात् भोजन किया ॥ १८ ॥

भोजनांते निशायां च घटिका वै यदा गता ।
तदाश्चर्यमयं ज्ञात्वा तुष्टाव च सुदर्शनम् १९

भोजन कर चुकने पर जब निम्बवृक्ष पर से सूर्यदेवता अन्तर्धान होगए,तब उस अतिथि ने यह बात भली भांति जान ली कि घड़ी भर रात्रि

व्यतीत होचुकी है ! इस आश्चर्यमय दृश्य को देख कर तथा श्रीमदाचार्य वर्य की महिमा के तत्त्व को दिव्य दृष्टि से देख कर वह श्रीसुदर्शनभगवान् की निम्नलिखित प्रकार से स्तुति करने लगे ॥ १९ ॥

जयतामिंगितज्ञाता नियमानन्द आत्मवान् ।
नियमेन वशे कुर्वन्भगवन्मार्गदर्शकः ॥ २० ॥

इङ्गित के जानने वाले, आत्मवान् श्रीनियमानन्दभगवान् (आप) जय को प्राप्त हों, जो नियम से जगत् को अपने वश में करके श्रीभगवान् के नित्य मार्ग का दर्शन कराते हैं ॥ २० ॥

पाषण्डद्रुमखण्डानां दाहकः पावकोत्तमः ।
गर्वपर्वतदम्भोलिः काम्यकर्माहिपक्षिराट् २१

भगवन् ! आप पाषाण्डरूपी वृक्षसमूहों के दहन करने के लिये उत्तम पावक के समान हैं, एवं गर्व रूपी पर्वतों के चूर्ण करने के लिये वज्र के सदृश हैं, तथा काम्य कर्मरूपी सर्पों के लिये गरुड़ के तुल्य हैं ॥ २१ ॥

मतवादिगजेन्द्राणां पञ्चाननमहोज्वलः ।
कामादिविषयाब्धीनां शोषणे कुम्भसम्भवः २२

आप मतवादी रूप गजेन्द्रों के लिये महा तेजस्वी सिंह के समान हैं, तथा काम आदि,—अर्थात् काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य, अहङ्कार, दम्भ, छल, पैशून्य आदि विषयों समुद्रों के सोखने के लिये अगस्त्य ऋषि के समान हैं ॥ २२ ॥

भक्तौषधिलतानां च पोषणे चन्द्रशीतलः ।
सम्प्रदायप्रबोधार्थं दीपको ध्वान्तनाशकः २३

आप भक्तरूपिणी लता के पोषण करने में चन्द्रमा के समान शीतल हैं और साम्प्रदायिक तत्त्वों के जानने के लिये अन्धकार विनाशक दीपक के समान हैं ॥ २३ ॥

संसारकूपमग्नानां करालम्बप्रदायकः ।
सुशीतलमना नित्यं माधुर्येण विराजते २४

आप संसाररूपी कूपों में डूबते हुए मनुष्यों के लिये हाथ का सहारा देनेवाले हैं, एवं आप नित्य ही सुप्रसन्नचित्त हैं और मधुरता से सदैव विराजमान रहते हैं ॥ २४ ॥

सुखदाता भवच्छेत्ता तापत्रयविनाशकः ।
श्रीकृष्णपूजनानन्दी सर्वदा शुद्धवेषवान् २५

आप सदैव ही सभों को सुख देने वाले हैं, संसार के दूर कराने वाले हैं, तीन तापों-अर्थात् आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक-इन तीनों तापों के दूर करनेवाले हैं, आप सदा शुद्ध वेश में रहनेवाले हैं और श्रीकृष्ण की पूजा में आप परम आनन्दित रहते हैं ॥ २५ ॥

आनन्दाश्रुकलापूर्णः प्रेमाब्धिकृतमज्जनः ।
अहंममेति दौर्जन्यनाशको बुद्धिदः सताम् २६

आप आनन्दाश्रुकला से सदा परिपूर्ण रहते हैं

और भगवत्प्रेमरूपी सागर में स्नान करते रहते हैं। आप "हमारा-तुम्हारा" इस निकृष्ट भावना के नाश करनेवाले हैं तथा सज्जनों को निर्मल बुद्धि देने वाले हैं ॥ २६ ॥

निर्जितस्वास्यलावण्यपूर्णचन्द्रोऽनुवर्त्तिनाम् ।
नितरां शाठ्यहंता च धाता सर्वभयापहः २७

आपने अपने सुन्दर मुखारविन्द की प्रभा से पूर्ण चन्द्र की सुन्दरता को जीत लिया है और आप अपने अनुचरों की शठता को हरण करके सदैव उनका पालन करते तथा उनके समस्त भयोंको दूर करते रहते हैं ॥ २७ ॥

अमानी मानदो मान्यो भावुको भावधारकः।
सर्वसंशयभेत्ता च सर्वागमविशारदः ॥ २८ ॥

आप स्वयं अमानी हैं, किन्तु औरों को मान देते हैं। आप मान्य हैं, आप भावुक हैं, आप भाव के धारण करनेवाले हैं, आप सब संशयों के छेदन करने वाले हैं और आप समस्त आगमों के विशारद हैं ॥ २८ ॥

कालकर्मगुणातीतः सर्वदाचारतत्परः ।
श्रीकृष्णस्य कृपापात्रः प्रेमसंपुटपुष्कलः ॥२९॥

आप काल, कर्म और गुण से परे हैं, आप सदैव " आचार " में, जो प्रधान धर्म है, (१)

(१) " आचारः प्रथमो धर्मः " इति भगवद्वाक्यम् ।

तत्पर रहते हैं, आप श्रीकृष्ण के पूर्ण कृपापात्र हैं और आप प्रेमरूपी सम्पुट के पुष्कर हैं ॥ २९ ॥

तारुण्यं वयसा प्राप्तो न विकारमनाः क्वचित् ।
ईदृग्महिमवान् कोऽपि दृश्यते विरलो भुवि ॥३०॥

यद्यपि आप तरुण अवस्था को प्राप्त होचुके हैं, तथापि आपके मन में किञ्चन्मात्र भी विकार नहीं है । ऐसी महिमा वाले कोई विरले ही मनुष्य संसार में दिखलाई देते हैं; अर्थात् साम्प्रत काल में आपके समान अन्य कोई जन भी नहीं है ॥३०॥

किं दुरापादनं तेषां विष्णुमार्गानुदर्शिनाम् ।
असिद्धमपि सिद्धं स्यात्तत्कृपापाङ्गवीक्षणैः ॥३१॥

जो भगवदीयजन भगवान् श्रीविष्णु के मार्ग के अनुगामी हैं, उनके लिये ऐसा होना कोई आश्चर्य की बात नहीं है; क्योंकि श्रीभगवान् के कृपाकटाक्ष से ही भगवज्जनों के असिद्ध कर्म भी सिद्ध होजाते हैं ॥३१॥

त्यक्तसर्वदुराचारः कृष्णचर्यापरिग्रहः ।
भावनाशुद्धसर्वस्वः पक्षपातविवर्जितः ॥ ३२ ॥

आप समस्त दुराचारों से दूर हैं, श्रीकृष्ण की सेवा ही आपका काम है, उत्तमभावना से आपका सभी कुछ शुद्ध होगया है, अतएव आप पक्षपात से रहित हैं ॥ ३२ ॥

सत्यवाक् सत्यसङ्कल्पः कृतसिद्धान्तनिर्णयः ।
वृद्धसेवी वृद्धिकर्त्ता भर्त्ता सर्वस्य पालकः ॥३३॥

आप सत्यवादी हैं, सत्यसंकल्प हैं, सिद्धान्त का निर्णय कर चुके हैं, वृद्धसेवी हैं, वृद्धि के कर्त्ता हैं तथा सभों के पालनपोषण करनेवाले हैं ॥ ३३ ॥

मंदानां शाठ्यनिवृत्या सर्वसौभाग्यदायकः ।
आचारवैरिणां हंता कार्यसिद्धिप्रदायकः ॥३४॥

आप अभागे जनों की शठता को दूर करके उन्हें समस्त सौभाग्यों के देनेवाले हैं, आचार के वैरियों के हनन करने वाले हैं, और कार्यों में सिद्धि के दाता हैं ॥ ३४ ॥

आचारभ्रष्टजीवानां शनैर्युक्त्या प्रबोधकः ।
भगवन्मार्गशुद्ध्या च कृतार्थीकृतभूतलः॥३५॥

हमने जो अभी यह कहा कि,—"आप आचार के वैरियों के हनन करनेवाले हैं;" इस कथन का यह अभिप्राय नहीं है कि आप उनका बध करते हैं,—बरन उन आचारभ्रष्ट जीवों को अपनी युक्तियों से धीरे धीरे प्रबोध कराकर उन्हें सन्मार्ग में लाते हैं और इसी श्रीभगवान के सत्यमार्ग की शुद्धि के बल से आपने भूमण्डल को कृतकृत्य कर दिया है ॥ ३५ ॥

हतोऽयं मानुषो लोको यदाचार्यस्वरूपिणि।
विभावसौ वर्त्तमाने जाड्यशीतेन पीड्यते ३६

यदि आचार्यस्वरूप आपके वर्त्तमान रहते संसारी जीव अपने को कृतार्थ न कर सकें तो यह कहना पड़ेगा कि सचमुच यह लोक (मनुष्यलोक) रसातल

को गया ! क्योंकि यह बड़ेही आश्चर्य और परिताप की बात है कि सूर्य के रहते भी कोई जाड़े पाले की पीड़ा को सहता रहे ! ॥३६॥

वाक्यं सत्यं च शृणुत त्यक्त्वा तर्कवितर्कताम्
आचार्यं शरणं यात कलौनिस्तारहेतवे ॥३७॥

इस प्रकार श्रीनिम्बार्क भगवान् की इतनी स्तुति करके उन आचार्यपाद नामक विद्वान् ने अपने अनुचरों की ओर देखकर उनसे यों कहा,— तुम सब हमारी इस सच्ची बात को सुनो,—वह यह कि अब समस्त तर्कवितर्कों को छोड़कर इस कलि-काल से छुटकारा पाने के लिये इन श्रीमदाचार्यवर्य के शरण में आओ ॥ ३७ ॥

भक्तानुग्रहकर्ता च सर्वसौख्यप्रदः शुभः ।
बालबोधीकृपादृष्ट्या प्रवृत्तिरहितः परः ॥३८॥

ये आचार्यमहाप्रभु भक्तों पर अनुग्रह करनेवाले और समस्त सुखों के देनेवाले हैं। ये परम श्रेष्ठ तथा प्रवृत्तिकर्मों से रहित हैं, एवं निज कृपादृष्टि से अज्ञजनों को भलीभांति ज्ञान प्रदान करनेवाले हैं ॥३८॥

आकारो भक्तिमार्गस्य वेदरत्नसमन्वितः ।
अनन्तपादभक्तिश्च लभ्यतेऽत्र समाहितः ३९

ये आचार्यवर्य वेदरत्न के सहित भक्तिमार्ग के स्वरूप ही हैं। अतएव इनके शरण में जो आवेंगे, वे श्रीभगवान् की भक्ति को अवश्यमेव पावेंगे ॥३९॥

स्वार्थहीनः परार्थश्च महोदारदयानिधिः।
यौवनैश्वर्यसामग्री येन विष्णौ निवेदिता ४०

ये आचार्यवर्य स्वार्थरहित हैं और परमार्थ से युक्त हैं। ये महा उदार और दया के समूह हैं। इन्होंने अपनी सम्पूर्ण यौवनैश्वर्य-सामग्री श्रीकृष्ण के चरणारबिन्द में अर्पित करदी है ॥ ४० ॥

अस्य दर्शनमात्रेण गर्वो मे विगतो महान्।
प्राप्तोऽहं शरणं चास्य जाता बुद्धिस्तु निर्मला ४१

इनके दर्शनमात्र से हमारा महान् गर्व दूर हो गया, हमारी बुद्धि निर्मल होगई और हम इनके शरण में प्राप्त हुए हैं ॥ ४१ ॥

युष्माभिः सहितश्चाहमद्यैवास्य जगद्गुरो।
ब्रजामि शरणं देवं प्रभुं निम्बार्कमीश्वरम् ४२

अतः तुमलोगों के साथ हम आजही इन जगद् गुरु, प्रभु, ईश्वर, श्रीमन्निम्बार्कदेव के शरण में प्राप्त होते हैं ॥४२॥

अस्माकमयमाचार्यो भक्त्या पूज्यश्च सर्वदा।
स्वप्नेऽपि नावमन्तव्यो गुरुरेव स्वयं हरिः ॥४३॥

आज ये श्रीनिम्बार्कदेव हमलोगों के आचार्य हुए, अतएव आज से हमलोगों को चाहिए कि सदैव भक्तिपूर्वक इनकी परिचर्या किया करैं। इनका कभी स्वप्न में भी अपमान न करना चाहिए, क्योंकि गुरु साक्षात् परमेश्वर ही है ॥ ४३ ॥

आचार्यो विष्णुरूपो हि पुराणेष्विति निश्चयः ।
निग्रहानुग्रहाभ्यां च श्रीकृष्णेन समानता ४४

आचार्य साक्षात् विष्णुस्वरूप है, ऐसा पुराणों में निश्चय किया गया है । अतएव निग्रह और अनुग्रह में आचार्य श्रीकृष्ण के समान ही है॥ ४४ ॥

हरौ रुष्टे गुरुस्त्राता गुरौ रुष्टे न कश्चन ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन प्रसाद्यः सर्वदेहिनाम् ॥४५॥

कहीं कहीं गुरुदेव भगवान् से बढ़कर हैं, ऐसा भी जानो । जैसे कि यदि किसीसे हरिभगवान् रुष्ट होजायं तो उसका परित्राण गुरुदेव कर देते हैं, किन्तु यदि गुरुदेव किसी पर रुष्ट होजायं तो उस व्यक्ति की रक्षा जगदीश्वर भी नहीं कर सकते । इसलिए सब मनुष्यों को चाहिए कि सब भांति से श्रीगुरुदेव को प्रसन्न रक्खें ॥४५॥

आचार्ये मानुषी बुद्धिर्न कर्त्तव्या कदाचन ।
मानुषैः श्रेय इच्छद्भिर्यतः स्थानं हि श्रेयसाम्४६

अपने कल्याण के चाहनेवालों को आचार्य में मानुषी बुद्धि कदापि नहीं करनी चाहिए, क्यों कि श्रीआचार्य ही सम्पूर्ण कल्याण गुणोंके आकर हैं ॥४६॥

यस्मिन्नहनि यर्ह्येव करोति कृपयात्मसात् ।
तर्ह्येव सर्वसिद्धिस्यान्न कांक्षा तिथिवारयोः ४७

जिसदिन, जभी श्रीगुरुदेव कृपापूर्वक अपनावैं तिसी दिन, तभी सर्वसिद्धि दायक योग समझना

चाहिए, और तिथि, वार, अर्थात् पञ्चाङ्गशुद्धि का विचार नहीं करना चाहिए ।। ४७ ।।

पञ्चसंस्कारदायी च तथोद्धर्ता भवार्णवात् ।
तस्य प्रत्युपकारार्हो न कोऽपि जगतीतले ४८

जो गुरुदेव पञ्चसंस्कार के देनेवाले तथा संसारसागर से उद्धार करनेवाले हैं, उनके इस उपकार का प्रत्युपकार करनेवाला संसार में कोई भी नहीं है ।। ४८ ।।

भगवन् कामग्रस्तोऽहमविद्याग्रंथिपीडितः ।
मामुद्धर जगन्नाथ चिरकालस्य दुःखिनम् ।।४९।।

आचार्यपाद अपने अनुगामियों से यों कहकर पुनः श्रीनिम्बार्कभगवान् से कहने लगे—हेभगवन् ! हम कामग्रस्त तथा अविद्यारूपिणी ग्रन्थि से ग्रथित हैं । अतएव हेजगन्नाथ ! हम चिरकाल के दुःखी हैं, इसलिये आप मेरा उद्धार कीजिए ।।४९।।

किं करोमि क्व गच्छामि त्वत्तोऽन्यं न हि दैवतम्
सर्वे स्वार्थपरिभ्रष्टा दृश्यन्ते जगतीतले ।।५०।।

अब हम क्या करें, या कहां जायं ? क्योंकि आपके अतिरिक्त हमारा कोई दैव अर्थात् भाग्यविधाता नहीं है; कारण यह कि हम जिधर देखते हैं, उधर ही संसार में सभी जन अपने स्वार्थ में फंसे हुए ही दिखलाई देते हैं ।। ५० ।।

अनन्यशरणत्राता रक्षणे रक्षको मतः ।

संसाराम्बुधिमग्नानामुद्धर्तासि नृणां प्रभो ५१

हे प्रभो ! आप अनन्यशरणों के शरण और उनके रक्षक प्रख्यात हैं, क्योंकि आप संसारसागर में डूबे हुए मनुष्यों के उद्धार करनेवाले हैं ॥ ५१ ॥

अहं नाथ निमग्नोऽस्मि घोरेऽस्मिन्भववारिधौ
निरयक्लेशसंत्रस्त आगतोऽस्मि तवान्तिके ५२

इसलिये हेनाथ ! हमभी इस भयानक संसार समुद्र में डूब रहे और नरक के दुःख से संत्रस्त होरहे हैं, इसीसे आपके शरण में आकर प्राप्त हुए हैं ॥ ५२॥

यथा नाश्नामि देवेश गर्भसंभववेदनाम् ।
तथा साधय मां नाथ पाहि पाहि कृपानिधे: ५३

हे देवेश ! जिसमें हम अब पुनः गर्भवास की पीड़ा को न पावें, वैसा प्रयत्न कीजिए ! हेकृपानिधे ! हेनाथ ! हमारी रक्षा कीजिए, हमें बचाइए ॥ ५३ ॥

विधयविधीन्नजानामि न जानामि त्वदर्चनम् ।
स्वीयानुग्रहभावेन मनःकामं प्रपूरय ॥ ५४ ॥

हेभगवन् ! हम विधि और निषेध को नहीं जानते और आपकी सेवा करनी भी नहीं जानते; इसलिये आप अपने अनुग्रह से हमारी मनोकामना पूरी कीजिए ॥ ५४ ॥

नियमाचारहीनोऽहं कामुको लोभलंपटः ।
दासोऽयमिति मां ज्ञात्वा कृपयस्व महामुने ५५

हेमहामुने ! हम नियम और आचार से हीन

द्वंद्वातीतस्वभावश्च कार्पण्यहरणोत्सुकः ॥५९॥

हे गम्भीरमति ! हेगोस्वामिन् ! आप निज शरणागतों के सुखदाता हैं, आपका स्वभाव द्वंद्व-भावों अर्थात् सुखदुःख आदि के भावों से रहित है और निजदासों के कार्पण्यभाव के दूर करने में सदैव उत्सुक रहते हैं ॥ ५९ ॥

वेदाध्ययनविख्यातः परमार्थपरायणः ।
श्रीकृष्णप्रियदासश्च श्रीकृष्णे कृतमानसः ६०

आप विख्यात वेदाध्ययनशील हैं,आप परमार्थ परायण हैं, आप श्रीकृष्ण के प्रिय सेवक हैं, और श्रीकृष्ण में ही आपका मन लगा रहता है॥६०॥

वैष्णवैः श्लाघनीयश्च वैष्णवानां प्रियङ्करः ।
वैष्णवप्रियसर्वार्थो वैष्णवैकपरायणः ॥ ६१ ॥

आप वैष्णवों में परमश्लाघनीय हैं और वैष्णवों के हित करनेवाले हैं । आप वैष्णवों के प्यारे सर्वस्व हैं और वैष्णवों के परायण हैं ॥६१॥

वैष्णवोद्वेगहारी च सदा वैष्णवदुःखहा ।
शोभाढ्यो वैष्णवाकीर्ण उडुराडिवशोभते॥६२॥

आप वैष्णवों के उद्वेग के हरण करने वाले हैं, आप सदैव वैष्णवों के दुःख के हरण करने वाले हैं, आप शोभाढ्य हैं, और आप वैष्णवों से ऐसे घिरे रहते हैं, जैसे तारागणों से चन्द्रमा ॥ ६२ ॥

बालोलाल्यस्त्वया स्वामिन् देशकालविमोहितः
न जानामि न जानामि कीदृशी महिमा तव ६३

हे स्वामिन् ! देशकाल से विमोहित हम नितान्त बालक हैं, अतएव आप हमारा पालन करिए। प्रभो! आपकी महिमा कैसी है, इसे हम नहीं जानते, नहीं जानते ॥६३॥

लघुस्तवेन भो नाथ भो आचार्यशिरोमणे ।
दासोऽयमिति मां ज्ञात्वा भक्तिं देहि पदाम्बुजे६४

हेनाथ! हे आचार्यशिरोमणे! हमारे इस छोटे से स्तोत्र से आप हमें निजदास जानकर अपने चरणार-रविन्द की भक्ति दीजिए॥६४॥

इति स्तुतः स भगवान् श्रीनिम्बार्को मुनीश्वरः ।
तं तदा कृपयांचक्रे शरणागतवत्सलः ॥ ६५ ॥

इस प्रकार आचार्यपाद विद्वान् से स्तूयमान हो कर भगवान् श्रीनिम्बार्कमहामुनीश्वर ने उनपर बड़ी कृपा की, क्योंकि आप अतीव शरणागतवत्सल हैं ॥६५॥

उवाच च महातेजाः श्रीनिम्बार्को मुनीश्वरः ।
दिष्ट्या समागतोऽसित्वं तिष्ठ श्रेयो भविष्यति६६

श्रीआचार्यपाद के बचनो को सुनकर महा-तेजस्वी श्रीनिम्बार्कमहामुनीश्वर ने उनसे यों कहा कि,—तुम बड़े भाग्य से यहां आगए, ठहरो, तुम्हारा कल्याण होगा ॥ ६६ ॥

इतिश्रीमदाचार्यचरितस्य नवमो विश्रामः समाप्तः॥९॥

३९६

श्रीश्रीकृष्णाय नमः ।

इत्युक्त्वा पुनराहैवं, श्रीनिम्बार्कोमहामुनिः ।
आचार्यपादं प्रणतं, शरणागतवत्सलः ॥ १ ॥

सरणागतबत्सल, महामुनि, श्रीनिम्बार्क भगवान् ने प्रणत आचार्यपाद से यों कह कर फिर इस प्रकार कहा ॥ १ ॥

शृणु विद्वन् कथां दिव्यां रहस्यग्रथितां शुभां ।
यां ज्ञात्वा त्वं महाभाग मुक्तिभागो भविष्यसि २

हेविद्वन्! रहस्यमयी, कल्याणकारिणी, दिव्य कथा को तुम सुनो; हेमहाभाग! इस कथा के मर्म को जानकर तुम मुक्ति के अधिकारी होजाओगे २

धन्योऽसि कृतकृत्योऽसि यस्य भार्येदृशी सती।
भविष्यति परं श्रेयो ह्यत्रागमनकारणात् ॥३॥

तुम धन्य हो, तुम कृतकृत्य हो, इसलिये कि तुम्हारी भार्या ऐसी सती साध्वी पतिव्रता है। यहां आने के कारण तुम्हारा परम कल्याण होगा॥ ३ ॥

त्वयोक्तं 'गर्भिणी भार्या' तत्सत्यं द्विजसत्तम ।
तस्या गर्भे परं तेजो वैष्णवं वर्त्तते शुभम् ॥४॥

हेद्विजसत्तम्! तुमने जो यह कहा कि, 'हमारी भार्या गर्भवती है',-यह वार्ता सत्य है। उसके गर्भ में कल्याणकारक परम वैष्णव तेज वर्त्तमान है ॥ ४ ॥

अस्मिन् कलियुगे घोरे बज्रनाभे प्रशास्तरि।
भविष्यति द्विज क्षिप्रं यो बालोऽद्भुतविक्रमः॥५॥

धाता पाता विधाता च परित्राता भवार्णवात्।
स एवाद्यो महाचार्यो 'भाष्यकारो' भविष्यति ६

हेद्विज ! इस घोर कलिकाल में, जब कि मथुरा के शासनकर्त्ता श्रीकृष्ण के प्रपौत्र श्रीवज्रनाभजी हैं, जो अद्भुत बालक शीघ्र ही होने वाला है, वही कलिकाल में श्रीवैष्णवधर्म का आद्याचार्य, ब्रह्मसूत्र का आदि भाष्यकार, एवं संसारी जीवों का धाता, पालनकर्त्ता और विधाता, तथा संसारसागर से पार करनेवाला होगा ॥ ५ ॥ ६ ॥

तं जानीहि महाभाग पाञ्चजन्यावतारकम् ।
वासुदेवांशसम्भूतं सम्प्रदायप्रवर्त्तकम् ॥ ७ ॥

हेमहाभाग ! उस बालक को तुम साक्षात् श्रीवासुदेव भगवान् के अंश पाञ्चजन्य (शङ्ख) का अवतार जानो; वही कलिकाल में लुप्त श्रीवैष्णव-सम्प्रदाय का प्रवर्त्तक होगा ॥ ७ ॥

त्वं चापि तस्य बालस्य जनकत्वेन सुव्रत ।
धरिण्यां देवरूपिण्यां नृभिः पूज्यो भविष्यसि ८

हेसुव्रत ! तुम भी उस बालक के पिता होने के कारण देवरूपिणी धरिणी (पृथ्वी) में मनुष्यों के द्वारा पूजित होगे ॥८॥

इत्युक्त्वाचार्यपादाख्यं सानुगं ब्रह्मवित्तमम् ।
शिष्यं कृत्वा समीपे स्वे वासयामास सः प्रभुः९

यों कहकर महाप्रभु श्रीनिम्बार्कमहामुनीश्वर ने

ब्रह्मविदों में श्रेष्ठ आचार्यपाद नामक ब्राह्मण को उनके अनुयायियों के सहित अपना शिष्य करके उनको अपने आश्रम में रक्खा ॥ ९ ॥

सोऽपि विद्वान् मुदा युक्तो मुनिपूजापरायणः ।
न्यवसत्तत्र पूतात्मा सस्त्रीकः सानुगः सुधीः ॥१०॥

वह पवित्रहृदय, निर्मलबुद्धि, विद्वान् आचार्यपाद भी अत्यन्त आनन्दित होकर श्रीनिम्बार्कभगवान् की सेवा करते हुए, अपनी स्त्री तथा अनुचरवर्गों के साथ श्रीमहामुनि (निम्बार्क) के आश्रम (निम्बग्राम) में निवास करते हुए ॥ १० ॥

अथ कालेन चाल्पेन विद्वत्पत्नी महोदया ।
लोकमातेति विख्याता सर्वशास्त्रविशारदा ॥११॥
दिव्ये सर्वगुणोपेते काले परमशोभने ।
सुषुवे तनयं दिव्यं पाञ्चजन्यावतारकम् ॥१२॥

अब थोड़े ही दिनों के अनन्तर वह चिरसौभाग्यवती विद्वत्पत्नी, जो 'लोकमाता' इसनाम से विख्यात थीं और सर्व शास्त्रों के जाननेवाली थीं,—परमशोभन, सर्वगुणसम्पन्न, दिव्य समय में पाञ्चजन्यावतार सुन्दर बालक को प्रसव करती हुईं ॥ ११ ॥ १२ ॥

विद्वानात्मज उत्पन्ने जाताह्लादो महामनाः ।
आहूय देवं निम्बार्कं स्नातः शुचिरलंकृतः ॥१३॥
कृत्वा स्वस्त्ययनं रम्यं पितृदेवार्चनं तथा ।

चकार विधिवत्सर्वं जातकर्मात्मजस्य ह ॥१४॥

उदारहृदय, आनन्दयुक्त, विद्वान् आचार्यपाद ने पुत्र के उत्पन्न होने पर स्नान कर, पवित्र हो, तथा वस्त्राभरणों से अलंकृत होकर, एवं श्रीनिम्बार्क-मुनीश्वर को बुलाकर रमणीय स्वस्तिवाचनपूर्वक पितरों और देवताओं का यथाविधि पूजन करके अपने पुत्र का विधिपूर्वक जातकर्म संस्कार किया ॥ १३ ॥ १४ ॥

शुक्लपक्षे यथा चन्द्रः स बालो मुनिवेश्मनि ।
एधाम्बभूव मेधावी पुष्टाङ्गश्च दिने दिने १५

वह मेधावी बालक महामुनि श्रीनिम्बार्कदेव के आश्रम में पुष्टाङ्ग होता हुआ दिन दिन ऐसे बढ़ने लगा, जैसे शुक्लपक्ष में प्रतिदिन चन्द्रमा पुष्टाङ्ग होता हुआ बढ़ता रहता है ॥ १५ ॥

पञ्चमेऽब्दे तु सम्प्राप्ते बालस्यास्य महामुनिः ।
यज्ञोपवीतसंस्कारं चकार विधिना शुभम् १६

महामुनि श्रीनिम्बार्क पञ्चम वर्ष में उस बालक का कल्याणकारी यज्ञोपवीत संस्कार विधिपूर्वक करते हुए ॥ १६ ॥

संस्कारपञ्चकं तस्य विधाय कृपया मुनिः ।
नारदोद्दिष्टमार्गेण ब्रह्मविद्यामदात्तदा ॥ १७ ॥

मुनिवर श्रीनिम्बार्कदेव ने कृपापूर्वक उस बालक का पञ्चसंस्कार करके नारदोपदिष्ट मार्ग से ब्रह्म-विद्या उसे प्रदान की ॥ १७ ॥

वैष्णवीं च तथा दत्वा दीक्षां सर्वार्थसाधिनीम्
मन्त्रराजं ददौ प्रेम्णा पञ्चसंस्कार(१)पूर्वकम् १८

इसी प्रकार श्रीनिम्बार्कभगवान् ने सर्वार्थ-साधिनी वैष्णवी दीक्षा उस बालक को देकर

---

(१) तत्र पञ्चकालानुवर्त्तन नाम । अभिगमनमुपादान योगः स्वाध्याय एव च । इज्या पञ्चप्रकारार्चा क्रमेण कथिता मया ॥ इति गौतमीयादभिगमनादिज्ञातव्यम् । तत्राभिगमन नाम स्वदेहकृत्य-देवगृहमार्जनादि-तुलसीपुष्पनैवेद्यादिचयनमुपादान, गन्धादिना देवार्चनमिज्या, स्वलक्ष्यपदार्थसिद्धान्तज्ञानपूर्वकस्तोत्रादिपाठः स्वाध्यायः । एकाग्रबुद्ध्या देवस्वरूपादिचिन्तन ध्यानमिति वाक्यार्थः। पञ्चाङ्गं नामपद्धत्यादि। पद्धतिं पटलं वर्म स्तवराज चतुर्थकम्। तथा सहस्रनामाख्य पञ्चांगं मंत्रसिद्धये ॥ इति तंत्रान्तरे । पञ्चयज्ञो नाम आत्मयज्ञादि । आत्मयज्ञो द्रव्ययज्ञो जपयज्ञस्ततः परम् ॥ स्वाध्यायो योगयज्ञश्च पञ्चयज्ञाः प्रकीर्तिताः ॥ इति । पञ्चार्थं नाम उपास्यरूपमित्यादि । पञ्चमाश्रमं नाम ॥ ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थस्तथा यतिः । चत्वारो विहिता शास्त्रे पञ्चमो मद्व्यपाश्रयः ॥ इति पञ्चरात्रे भगवद्वचनाद् ज्ञेयम् । पुनस्तत्रैव । ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थस्तथैव च । परिव्राट् च चतुर्थोत्र पचमो नोपपद्यते॥ चत्वारः प्राकृतास्त्वेते तादृशोऽन्यो न विद्यते । वैष्णवस्तद्गुणातीतो ह्यतः प्रोक्तोऽस्ति पचमः ॥ इतिभगवद्वचनम्। पुनरपि पंचरात्रे । ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थो यतिस्तथा । चत्वार आश्रमा एते पंचमो मद्व्यपाश्रयः॥ इति। स्कान्दे च । पञ्चास्त्राङ्काः पञ्चसंस्कारयुक्ताः,पञ्चार्थज्ञाः पञ्चमोऽपाश्रयनिष्ठाः। ते वर्णानां पंचमाश्चाश्रमाणां विष्णोर्भक्ताः पञ्चकालप्रपन्नाः॥ इति। सत्यमेतन्मुनिश्रेष्ठ! चत्वारो ये त्वयोदिताः । आश्रमास्तेभ्य एवाय पचमो हि ममाश्रयः ॥ इति । हारीते च । एकवर्णैकगोत्रास्ते सन्ति सर्वेऽपि वैष्णवाः। रहिताः पूर्ववर्णेन स्वामीगोत्रा हि किङ्कराः ॥ स्वामीगोत्र इत्यनेन नैष्ठिको ज्ञेयः । गुरवे सन्न्यसेद्देहमिति । शरीरं चासु विज्ञानं वासः कर्मगुणान् वसून् । गुर्वर्थे धारयेद्यस्तु सशिष्योऽनन्तरः स्मृतः ॥ इति च वचनात् ।

पञ्चसंस्कारपूर्वक प्रेम से मन्त्रराज (श्रीगोपालमन्त्र) को प्रदान किया ॥ १८ ॥

वेदशास्त्रमयीं विद्यां ब्रह्मविद्यां परां शुभाम् ।
दत्त्वा विधिवदाचार्यः प्रोवाच मुनिसत्तमः १९

इस प्रकार मुनिश्रेष्ठ श्रीनिम्बार्काचार्य ने वेद-शास्त्रमयी विद्या तथा परा ब्रह्मविद्या को विधि-पूर्वक प्रदान करके उस बालक से यों कहा ॥ १९ ॥

पुत्र धन्योऽसि तिष्ठात्र कृतार्थोसि महाप्रभ ।
आद्याचार्यो भवाशुत्वं भाष्यकारो ममाज्ञया २०

हे पुत्र ! तू धन्य है; हे तेजस्वी बालक ! तू कृतार्थ हुआ; तू यहीं निवास कर और हमारी आज्ञा से तू शीघ्र वैष्णवधर्म का साम्प्रतकाल में आद्या-चार्य तथा ब्रह्मसूत्र का आदि भाष्यकार हो ॥ २० ॥

इति श्रुत्वा गुरोर्वाक्यं दण्डवत्प्रणिपत्य च ।
लोमहर्षसमायुक्तो वाष्पपर्याकुलेक्षणः ॥ २१ ॥
प्राप्य पञ्चपदीं विद्यां सर्वाविद्यानिकृन्तनीम् ।
नैष्ठिकं व्रतमास्थाय स्वशरीरं न्यवेदयत् ॥२२॥

इस प्रकार गुरुदेव श्रीनिम्बार्कभगवान् के वचनो को सुनकर उस बालक अर्थात् श्रीश्रीनिवासाचार्य के रोएं मारें आनन्द के खड़े होगए और आंखों में प्रेम के आंसू छागए । फिर उन्होंने निज श्रीगुरुदेव को दंडवत्प्रणाम कर और सम्पूर्ण अविद्याओं के नाश करनेवाली पञ्चपदी विद्या को श्रीगुरुदेव से

पाकर, एवं नैष्ठिकब्रह्मचर्य व्रत का अवलम्बन करके अपना शरीर श्रीगुरुदेव के अर्पण कर दिया, अर्थात् आत्मनिवेदन करके उनके अनन्य सेवक होगए ॥ २१ ॥ २२ ॥

आचार्योऽपि स्वयं प्रीत्या पञ्चकालानुवर्त्तनम् ।
पञ्चाङ्गं पञ्चयज्ञं च पञ्चार्थं पञ्चमाश्रमम् ॥ २३ ॥
वेदान्तपारिजातादिसौरभाख्यं ददौ मुनिः ।
यत्र वाक्यार्थरूपेण सर्ववेदार्थसंग्रहः ॥ २४ ॥
दर्शितो ब्रह्मसूत्राणां भिन्नाभिन्नाश्रयो हरिः ।
शास्त्रार्थकामधेनुं च दशश्लोकीं पुनर्ददौ ॥ २५ ॥

तब तो श्रीनिम्बार्क महामुनि ने स्वयं ही श्रीश्रीनिवासाचार्य को प्रीतिपूर्वक पञ्चकाल... पद्धति, श्रीराधा तथा श्रीगोपालजी का पञ्चाङ्ग, पञ्चयज्ञविधि, पञ्चार्थ, तथा पञ्चमाश्रम अर्थात् परमहंसाश्रम प्रदान किया। फिर ब्रह्मसूत्र की वृत्ति अर्थात् वाक्यार्थरूप निजकृत 'वेदान्तपारिजातसौरभ' को दिया, जिसमें ब्रह्मसूत्र के वाक्यार्थरूप से सम्पूर्ण वेदार्थों का संग्रह है, और जिसके द्वारा यह सिद्ध किया गया है कि श्रीभगवान् 'भिन्न और अभिन्न के आश्रय' हैं, अर्थात् 'द्वैताद्वैतसिद्धान्त' स्पष्ट किया गया है। इसके अनन्तर श्रीआचार्य महाप्रभु ने श्रीश्रीनिवासाचार्य को 'शास्त्रार्थकामधेनु' और 'दशश्लोकी' प्रदान किया ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥

उवाच राधाकुण्डाख्ये स्थितिः कार्य्या त्वयानघ

यथा राधा प्रिया विष्णोः कुण्डस्तस्यास्तथा प्रियः

इसके अनन्तर श्रीमदाचार्यचरणों ने श्रीश्रीनिवासाचार्य से यों कहा,—हेनिष्पाप ! अब तुम कुछ दिन लों श्रीराधाकुण्ड पर जाकर निवास करो। श्रीकृष्ण को श्रीराधा जैसी प्यारी हैं,उनका अर्थात् श्रीराधा का कुण्ड भी वैसा ही प्रिय है;अतएव अब कुछ दिन तुम वहां जाकर भजन करो ॥ २६ ॥

त्वमिदं जप भद्रं ते राधाष्टकमनुत्तमम् ।
राधया माधवं देवं शीघ्रं द्रक्ष्यसि चक्षुषा ॥२७॥

वहां जाकर तुम हमारे दिए हुए इस परमोत्तम 'श्रीराधाष्टक' का जप करो; इससे तुम्हारा कल्याण होगा, अर्थात् तुम शीघ्र ही इन्हीं नेत्रों से श्रीराधा-माधव का दर्शन पाओगे ॥ २७ ॥

यदा द्रक्ष्यसि श्रीराधां श्रीकृष्णप्रियगेहिनीम् ।
तदा त्वं पुत्र विश्वेऽस्मिन् जीवन्मुक्तो भविष्यसि

हेपुत्र ! श्रीकृष्ण की प्यारी घरनी श्रीराधा का दर्शन जब तुम पाओगे, तब इस संसार में जीवन्मुक्त होजाओगे ॥ २८ ॥

इत्याचार्यचरित्रस्य विश्रामे दशमेऽधुना ।
श्रीनिवासार्यदेवस्य महिमा वर्णिता परा ॥२९॥

इस प्रकार अबश्रीआचार्यचरित के दशम विश्राम में श्रीश्रीनिवासाचार्यवर्य की परा महिमा कही गई २९

इतिश्रीमदाचार्यचरितस्य दशमो विश्रामः समाप्तः ।

४२५

श्रीश्रीराधाकृष्णाभ्यान्नमः ।

अथ श्रीश्रीराधाष्टकम् ।

श्रीसुदर्शन उवाच ।

नमस्ते श्रियै राधिकायै परायै,
नमस्ते नमस्ते मुकुन्दप्रियायै ।
सदानन्दरूपे प्रसीद त्वमन्तः-
प्रकाशे स्फुरन्ती मुकुन्देन सार्द्धम् ॥१॥

श्रीदेवी (१) को नमस्कार है, परादेवी श्रीराधाजी को नमस्कार है, श्रीमुकुन्दभगवान् की प्रियाजी को नमस्कार है, नमस्कार है । हे सदानन्दरूपे ! आप प्रसन्न हों, क्योंकि आप अन्तःकरण में प्रकाश करनेवाली हैं और उसी प्रकाश में श्रीमुकुन्दभगवान् के साथ आप प्रकट दर्शन देती हैं ॥ १ ॥

स्ववासोपहारं यशोदासुतं वा,
स्वदध्यादिचौरं समाराधयन्तीम् ।
स्वदाम्नोदरे या बबन्धाशु नीव्याः,
प्रपद्येनु दामोदरप्रेयसीं ताम् ॥ २ ॥

अपनी नीवी के दाम (डोर) से जिनने श्रीदामोदर भगवान् के उदर को शीघ्र ही बांधा था, उन श्रीयशोदा जी के नन्दन का आप भलीभांति आराधन करती हैं।

(१) वृन्दावन के प्रसङ्ग मे श्रीशब्द से राधा का ही बोध होता है । यथा,—लक्ष्मीरन्यत्र देवी तु राधा वृन्दावने स्मृता ।

वे श्रीदामोदरभगवान् आपके वस्त्रों के अपहरण करने वाले और आपके दधि, माखन आदि के चुरानेवाले हैं। अतः श्रीदामोदरभगवान् की उन्हीं प्रियतमा (आप) के शरण में हम प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

दुराराध्यमाराध्य कृष्णं वशे तं,
महाप्रेमपूरेण राधाभिधाभूः ।
स्वयं नामकीर्त्त्या हरौ प्रेमयच्छ,
प्रपन्नाय मे कृष्णरूपे समक्षम् ॥ ३ ॥

अपरिमित प्रेम से दुराराध्य श्रीकृष्ण का आराधन करके आपने उन्हें अपने वश में कर लिया है, इसीसे आपका नाम श्रीराधा हुआ है (२) अतएव आप अपने श्रीराधा नाम की कीर्त्ति से ही श्रीकृष्ण का प्रत्यक्ष प्रेम हमें दीजिए। हे कृष्णरूपे! हम साक्षात् आपके शरण में आए हुए हैं ॥ ३ ॥

मुकुन्दस्त्वया प्रेमडोरेण बद्धः,
पतङ्गो यथा त्वामनुभ्राम्यमाणः ।
उपक्रीडयन्हार्दमेवानुगच्छन् ,
कृपां वर्त्तते कारयातो मयीष्टिम् ॥ ४ ॥

श्रीमुकुन्दभगवान् आपके प्रेमरूपी डोर से बँधे हुए इस प्रकार आपके पीछे लगे हुए डोला

(२) राधेत्यत्र राधसंसिद्धौ धातुः । राध्नोति कृष्णमिति राधा । कृष्णाराधनतो जाता राधा कृष्णस्वरूपिणी इति शास्त्र-वचनात् ।

करते हैं, जैसे पतङ्ग । वे आपके संग क्रीड़ा किया करते और आपके हृदयगत भावों के अनुकूलही चलते हुए आपके समीप स्थित रहते हैं। अतएव हमपर उनकी वह कृपा कराइए, जो हमें इष्ट है ॥ ४ ॥

व्रजन्तीं स्ववृन्दावने नित्यकालं,
मुकुन्देन साकं विधायाङ्कमालाम् ।
समामोक्षमाणानुकम्पाकटाक्षैः,
श्रियं चिन्तये सच्चिदानन्दरूपाम् ॥५॥

आप अङ्कमाला धारणकर नित्यप्रति निज वृन्दावन में कृपाकटाक्ष से मुक्ति वितरण करती हुईं मुकुन्द के साथ विचरती रहती हैं, ऐसी सच्चिदानन्दरूपा श्रीराधा (आप) का चिन्तन हम किया करते हैं ॥५॥

मुकुन्दानुरागेण रोमाञ्चिताङ्गै-
रहं वेप्यमानां तनुस्वेदबिन्दुम् ।
महाहार्दवृष्ट्या कृपापाङ्गदृष्ट्या,
समालोकयन्तीं कदा त्वां विचक्षे ॥६॥

श्रीमुकुन्दभगवान् के अनुराग से आपके अङ्गों में जब रोमाञ्च हो आते हैं और आप सात्विक भावों के उदय होने से निज अङ्गों में कम्प एवं स्वेदबिंदुओं को धारण करलेती हैं; और उसी अवस्था में आप महाहार्द की वृष्टि एवं कृपापाङ्ग की दृष्टि कर उन श्रीमुकुन्दभगवान् की ओर अवलोकन करने लगती हैं,—आपके ऐसे दर्शन को हम कब पावैंगे ? ॥६॥

यदङ्कावलोके महालालसौघं,
मुकुन्दः करोति स्वयं ध्येयपादः ।
पदं राधिके ते सदा दर्शयान्त-
र्हृदा तं नमन्तं, किरद्रोचिषं माम् ॥७॥

जिन श्रीमुकुन्दभगवान् के चरणों का आप ध्यान किया करती हैं, वे श्रीमुकुन्दभगवान् स्वयं आपके चरणचिह्न को देखतेही आपके मिलने की महालालसा के वेग को धारण करते हैं। अतएव, हेश्रीराधिके ! आप अपने महाप्रभावान उन्हीं श्रीचरणारबिन्दों का दर्शन अन्तर्हृदय से हमें सदैव कराया कीजिए, क्योंकि हम आपके उन चरणारबिंदों में प्रणाम कर रहे हैं ॥ ७ ॥

सदा राधिकानाम जिह्वाग्रतः स्तात्
सदा राधिकारूपमक्ष्यग्र आस्तात् ।
श्रुतौ राधिकाकीर्तिरन्तःस्वभावे,
गुणा राधिकायाः श्रिया एतदीहे ॥८॥

हम तो यही बाञ्छा करते हैं कि हमारीजिह्वा पर सदा श्रीराधिका का नाम रहे, सर्वदा हमारी आंखों के आगे श्रीराधिका का रूप बिराजे, हमारे कानों में सदैव श्रीराधिका की कीर्त्ति पहुंचती रहे और श्रीरूपिणी श्रीराधिका के गुण हमारे अन्तः-करण में नित्यही स्वभाव से ही स्फुरित होते रहें, यही प्रार्थना है ॥ ८ ॥

इदं त्वष्टकं राधिकायाः प्रियायाः,
पठेयुः सदैवं हि दामोदरस्य ।
सुतिष्ठन्ति वृन्दावने कृष्णधाम्नि,
सखीमूर्त्तयो युग्मसेवानुकूलाः ॥ ९ ॥

श्रीदामोदरभगवान् की श्रीप्रियाजी, श्रीराधिकाजी के इस अष्टक (स्तोत्र) को जो लोग सदैव ही पढ़ा करेंगे, वे श्रीकृष्ण के निजधाम श्रीवृन्दावन में आनन्द-पूर्वक निवास कर सकेंगे और अन्त में सेवानुकूला नित्यसखी श्रीललितादिक के समान दिव्य सखीरूप धारण करके श्रीयुगलमूर्त्ति अर्थात् श्रीराधा-कृष्ण की नित्य एवं अन्तरङ्ग सेवा में पहुंच जायंगे ॥ ८ ॥

मोहं निर्दलयन्मदं कवलय-
न्नुन्मूलयञ्जाड्यताम् ।
बुद्धिं निर्मलयन् दयां प्रबलयन्,
हृद्रोगमुत्सादयन् ॥
भूतानां भवभीतिमाशु शमय-
न्नुदीपयन् शिष्टताम् ।
भक्तिज्ञानविरागसाधनमिदं,
राधाष्टकं पावनम् ॥ १० ॥

यह परम पवित्र श्रीराधाष्टक मोह को दलन करता, मद को खाता, जड़ता को उखाड़ फेंकता, बुद्धि को निर्मल करता, हृदय के रोग—कामबाधा को

दूर करता, शिष्टता को उद्दीपित करता और मनुष्यों के जन्म-मरण-जन्य भय को मिटाता हुआ, भक्ति, ज्ञान एवं वैराग्य का एकमात्र साधनकर्त्ता है ॥ १० ॥

इति राधाष्टकं दिव्यं भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ।
यः पठेत्परया भक्त्या तयोः सः प्रियतां व्रजेत् ११

इस प्रकार दिव्य और भुक्ति-मुक्ति के देनेवाले इस श्रीराधाष्टक को जो लोग परा भक्ति से पढ़ेंगे, वे उन दोनो–श्रीराधा एवं श्रीकृष्ण के प्यारे होजायंगे, ॥ ११ ॥

इतिश्रीश्रीनिम्बार्काचार्यविरचितं श्रीराधाष्टकं सम्पूर्णम् ।

इत्याचार्यचरित्रस्य विश्रामे रुद्रसंज्ञके ।
श्रीनिम्बार्ककृतं दिव्यं राधाष्टकमुदीरितम् ॥१२॥

इस प्रकार श्रीआचार्यचरित के ग्यारहवें विश्राम में श्रीश्रीनिम्बार्काचार्यकृत श्रीश्रीराधाष्टक का वर्णन किया गया ॥ १२ ॥

इतिश्रीश्रीमदाचार्यचरितस्य एकादशो विश्रामः समाप्तः ॥११॥

॥ ४३७ ॥



श्रीश्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः ।

इति राधाष्टकं दिव्यमुपदिश्य मुनीश्वरः ।
आज्ञां कुर्वन्नथोवाच शरणागतवत्सलः॥ १॥

शरणागतवत्सल, महामुनीश्वर श्रीनिम्बार्क-भगवान् इस प्रकार दिव्य श्रीराधाष्टक का उपदेश करके आज्ञा देते हुए यों बोले ॥ १ ॥

पुत्रैनं जप भद्रं ते सर्वां विद्यामवाप्स्यसि ।
छन्दांस्ययातयामानि भविष्यन्ति तवानघः२

हेपुत्र ! तू इस श्रीराधाष्टक का जप कर, तेरा कल्याण होगा, और तू श्रीराधाकृष्ण की कृपासे बिना पढ़ेही सम्पूर्ण विद्याओं को पाजायगा । हे निष्पाप! तेरे लिये वेद ऐसे अभ्यस्त होजायंगे,मानो उन्हें तूने तत्क्षण पढ़ाहो ॥ २ ॥

वेदशास्त्रपुराणानां तत्त्वानि हृदये तव ।
उदेष्यन्ति स्वयं वत्स राधाकृष्णप्रसादतः ॥३॥

हे वत्स ! श्रीराधाकृष्ण की कृपा से वेद,शास्त्र, एवं पुराणों के सम्पूर्ण तत्त्व स्वयं ही तेरे हृदय में उदय होजायंगे ॥ ३ ॥

सिद्धे मन्त्रे कुरु क्षिप्रं वाक्यार्थे भाष्यमुत्तमम् ।
ममाज्ञया कलौ नष्टं सम्प्रदायं प्रकाशय ॥४॥

अस्तु, जब यह मंत्र सिद्ध होजाय,तब तू शीघ्र ही ब्रह्मसूत्र पर जो हमारा वाक्यार्थ है,उसपर भाष्य की रचना करियो और हमारी आज्ञा से कलिकाल

में नष्ट वैष्णव सम्प्रदाय का पुनः प्रकाशन करियो ॥४॥

ओमित्यानम्य मूर्द्धानं बध्वा भक्त्याञ्जलि मुदा।
श्रीश्रीनिवास आचार्यो पुनः पप्रच्छ सादरम् ५

श्रीश्रीनिवासाचार्य ने श्रीनिम्बार्कभगवान् की आज्ञा को सुनकर, आनन्द से हाथ जोड़, सिर झुका और "जो आज्ञा" कहकर पुनः इस प्रकार प्रश्न किया ॥ ५ ॥

भगवन् भवता प्रोक्ता युगलोपासना परा।
किन्तु मध्ये तयोर्ब्रह्मन् स्तोत्रमेकं प्रकाशितम् ६

हे भगवन्! आपने "श्रीराधाकृष्ण" की युगल उपासना को श्रेष्ठ कहा है; किन्तु हे ब्रह्मन्! श्रीराधा और श्रीकृष्ण—इन दोनो में से केवल आपने एक ही स्तोत्र (श्रीराधाष्टक) प्रकट किया है ॥ ६ ॥

यथा राधाष्टकं दत्तं परया भवता मुदा।
तथैव देहि मे ब्रह्मन् श्रीकृष्णाष्टकमुत्तमम् ॥७॥

हे ब्रह्मन्! जैसे आपने परमानन्द-पूर्वक मुझे "श्रीराधाष्टक" को दिया, उसी प्रकार कृपाकर "श्रीकृष्णाष्टक" को भी प्रदान कीजिए ॥ ७ ॥

इति श्रुत्वा विहस्याथ प्रोवाच मुनिसत्तमः।
धन्योऽसि कृतकृत्योऽसि गृहाण गदितं मया ॥८॥

श्रीनिम्बार्कभगवान् ने श्रीश्रीनिवासाचार्य के ऐसे विनीत बचनों को सुन, हंसकर यों कहा,—हे वत्स! तू धन्य है, तू कृतकृत्य हुआ। ले, हम "श्रीकृष्णाष्टक" को प्रकाशित करते हैं, उसे तू ग्रहण कर ॥ ८ ॥

श्रीश्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः ।

अथ श्रीश्रीकृष्णाष्टकम् ।

श्रीसुदर्शन उवाच ।

नमामीश्वरं सच्चिदानन्दरूपं,
लसत्कुण्डलं गोकुले भ्राजमानम् ।
यशोदाभियोलूखलाद्धावमानं,
परामृष्टमत्यन्ततो द्रुत्य गोप्या ॥१॥

श्रीसुदर्शन-भगवान् (श्रीनिम्बार्काचार्य) ने कहा,—जो श्रीकृष्ण उलूखल पर से उतर कर श्रीयशोदाजी के भय से भागे थे, किन्तु उन्हें श्रीयशोदाजी ने दौड़कर पकड़ लिया था; उन,-श्रीगोकुल में शोभायमान, युगल कुण्डलों से विभूषित, सच्चिदानन्दस्वरूप, जगदीश्वर श्रीकृष्ण को हम प्रणाम करते हैं ॥ १ ॥

रुदन्तं मुहुर्नेत्रयुग्मं मृजन्तं,
कराम्भोजयुग्मेन सातङ्कनेत्रम् ।
मुहुः श्वासकं यत्त्रिरेखाङ्ककण्ठ-
स्थितं चैव दामोदरं भक्तिबद्धम् ॥२॥

सभय-विलोचन, रोदन करते हुए, दोनो कर-कमलों से अपने उभय नेत्रों को तथा त्रिरेखायुक्त कण्ठ में लपटी हुई अपनी अलकावली को बारम्बार मीजते हुए, भक्ति से बँधे हुए श्रीदामोदर (श्रीकृष्ण) भगवान् को हम प्रणाम करते हैं ॥ २ ॥

इतीदृक् स्वलीलाभिरानन्दकुण्डे,
स्वघोषं निमज्जन्तमाख्यापयन्तम्
तदीयेप्सितज्ञेषु भक्तैर्जितं त्वां,
पुनः प्रेमतस्तं शतावृत्ति वन्दे ॥३॥

इस प्रकार की अपनी अचिन्त्य लीलाओं से अपने ब्रजवासियों को आनन्द के कुण्ड में गोते देने वाले तथा उनकी प्रख्याति करनेवाले, एवं अपने भक्तजनों की इच्छा के जाननेवाले और उन्हीं भक्तों के वश में प्राप्त श्रीकृष्ण को हम बारम्बार प्रेमपूर्वक सैकड़ों वार प्रणाम करते हैं ॥ ३ ॥

वरं देव मोक्षं न मोक्षावधिं वा,
न चान्यं वृणेऽहं वरेशादपीह ।
इदं ते वपुर्बालगोपालबालं,
सदा मे नमस्या चिरास्तां किमन्यैः ॥४

हे देव ! (हे श्रीकृष्ण) आप वरों के देनेवाले हैं, इसलिये हम आपसे न तो मोक्ष चाहते हैं, न मोक्ष की अवधि ही चाहते हैं; यहांतक कि यह आप निश्चय जाने कि हम अन्य किसी प्रकार का भी कोई वर आपसे नहीं चाहते। किन्तु हां इतना तो हम अवश्य चाहते हैं,—चाहे आप इसे वर ही समझलें—कि आपके इस बालगोपाल स्वरूप को हम सदा प्रणाम किया करें । बस, अन्य वरों से हमें कुछ काम नहीं है ॥ ४ ॥

इदं ते मुखाम्भोजमत्यन्तनीलै-
वृतं कुण्डलैः स्निग्धवक्त्रैश्च गोप्या
मुहुश्चुम्बितं बिम्बरक्ताधरं मे,
मनस्याविरास्तामलं लक्षलाभैः ॥५॥

हे भगवन् ! हमें और कुछ न चाहिए,—केवल इसीमें हमें लाखों पदार्थों के लाभ जैसा सुख प्राप्त होजायगा, यदि हम अत्यन्त श्याम अलकावलियों से युक्त, कुण्डलों से शोभित और गोपियों के स्नेहमय मुखारबिन्दों से चुम्बित आपके रक्ताधर विशिष्ट इस मुखारबिन्द को प्रणाम कर सकेंगे; अर्थात् यदि आप हमें प्रणाम करने के समय अपना मानस दर्शन दिया करेंगे तो हम अत्यन्त कृतकृत्य होजायंगे ॥ ५ ॥

नमो देव दामोदरानन्त विष्णो,
प्रसीद प्रभो दुःखजालाब्धिमग्नम् ।
कृपादृष्टिवृष्ट्यातिदीनं बतानु-
गृहाणेश मामद्य मेध्याक्षिदृश्यः ॥६॥

हे देव ! हे दामोदर ! हे अनन्त ! हे कृष्ण ! हे प्रभो ! हम आपको प्रणाम करते हैं, आप प्रसन्न होइए और अनुग्रहपूर्वक निज कृपादृष्टि की वृष्टि से अतिदीन और दुःख-जञ्जाल-रूपी सागर में निमग्न हमारा अब हर्षपूर्वक उद्धार करके हे ईश ! आप शीघ्र ही हमारे नेत्रगोचर होइए, अर्थात् प्रत्यक्ष दर्शन दीजिए ॥ ६ ॥

कुवेरात्मजौ बद्धमूर्त्यैव यद्व-
त्वया मोचितौ भक्तिभाजौ कृतौ च।
तथा प्रेमभक्तिं स्वकां मे प्रयच्छ,
न मोक्षाग्रहो मेऽस्ति दामोदरेह ॥७॥

देखिए, बद्धों को मुक्त करना यह आपही का काम है। कुबेर के दोनों पुत्रों (नलकूवर और मणिग्रीव) का बद्धावस्था में ही, अर्थात् जब वे वृक्ष योनि मे प्राप्त थे, तभी जैसे आपने उन दोनों को मुक्त किया और निज भक्ति का अधिकारी बनाया, उसी प्रकार निज प्रेमलक्षणा भक्ति हमें भी दीजिए। क्योंकि हे दामोदर ! इस संसार में हमारा मोक्ष हो, यह आग्रह अर्थात मोक्षाग्रह हमको नहीं है ॥ ७ ॥

नमस्तेऽस्तु दाम्ने स्फुरद्दीप्तिधाम्ने,
त्वदीयोदरायाथ विश्वस्य धाम्ने।
नमो राधिकायै त्वदीयप्रियायै,
नमोऽनन्तलीलाय देवाय तुभ्यम् ॥८॥

चञ्चत्प्रभा के धाम आपके दाम को नमस्कार है, विश्व (संसार) के धाम आपके उदर को प्रणाम है, आपकी प्रियतमा श्रीराधिकाजी को साष्टाङ्ग दण्डवत्प्रणति है और अनन्तलीलाओं के करनेवाले देव (आप) को बारम्बार नमस्कृति है ॥ ८ ॥

इदं त्वष्टकं माधवस्य प्रियस्य,
पठेयुः सदैवं हि ये राधिकायाः।

सुतिष्ठन्ति वृन्दावने नित्यधाम्नि,
सखीमूर्त्तयो युग्मसेवानुकूलाः ॥ ९ ॥

श्रीराधिकाजी के प्रिय श्रीमाधवभगवान् के इस अष्टक को जो लोग सदैव ही पढ़ा करेंगे, वे नित्यधाम श्रीवृन्दावन में सुखपूर्वक निवास कर सकेंगे, और अन्त में दिव्य सखीमूर्त्ति को धारण करके श्रीयुगल अर्थात् श्रीराधा तथा श्रीकृष्ण की सेवा के अधिकारी होजायंगे ॥ ८ ॥

अज्ञानं दलयत्तमः कवलय-
त्प्रोन्मूलयन्मूढताम् ।
चित्तं निर्मलयद्विवेकमुदय-
च्छोकाधिमुत्सादयत् ॥
भक्तानां वृजिनार्त्तिमाशुशमय-
न्नोद्दीपयन्साधुताम् ।
राधाकृष्णवशप्रसाधनमिदं-
कृष्णाष्टकं पावनम् ॥ १० ॥

अज्ञान को दलन करता हुआ, तमोगुण को खाता हुआ, मूढ़ता को उखाड़ता हुआ, चित्त को निर्मल करता हुआ, विवेक का उदय करता हुआ, शोक की व्याधि को दूर करता हुआ, भक्तों की संसार-जन्य व्याधियों को अतिशीघ्र ही मिटाता हुआ, और साधुता (महानुभावता) का उदय करता हुआ, यह परमपवित्र "श्रीकृष्णाष्टक" श्रीराधा

और श्रीकृष्ण को अपने वश में कर लेने का बड़ा भारी साधन है ॥ १० ॥

इति कृष्णाष्टकं दिव्यं सर्वेप्सितविधायकम् ।
यः पठेत्परया भक्त्या तयोः स प्रियतां व्रजेत् ११

समस्त इच्छाओं को पूर्ण करनेवाला यह श्रीकृष्णाष्टक परम दिव्य पदार्थ है । जो लोग परम भक्ति-पूर्वक नित्य ही इसका पाठ करते हैं, वे श्रीराधा और श्रीकृष्ण के बड़े प्यारे होजाते हैं ॥ ११ ॥

इत्याचार्यचरित्रस्य विश्रामे सूर्यसंज्ञके ।
श्रीनिम्बार्ककृतं दिव्यं कृष्णाष्टकमुदीरितम् १२

इस प्रकार श्रीआचार्यचरित के बारहवें विश्राम में श्रीश्रीनिम्बार्काचार्यकृत श्रीश्रीकृष्णाष्टक का वर्णन किया गया ॥ १२ ॥ २० ॥

इतिश्रीश्रीमदाचार्यचरितस्य द्वादशो
विश्रामः समाप्तः ॥ १२ ॥

॥ ४५७ ॥

श्रीश्रीराधाकृष्णाभ्यांनमः ।

ततःप्रोवाच भगवान् श्रीनिम्बार्को मुनीश्वरः ।
गच्छाधुनाशु भद्रन्ते नियोगं मे प्रपालय ॥१॥

इसके अनन्तर भगवान् श्रीनिम्बार्क महामुनीश्वर ने श्रीश्रीनिवासाचार्य से यों कहा कि हे वत्स ! अब तू शीघ्र वहां जा । तेरा कल्याण होगा । मेरी आज्ञा का तू पालन कर ॥ १ ॥

श्रुत्वा श्रीमद्गुरोर्वाक्यं दण्डवत्प्रणिपत्य च ।
निदेशं शिरसाधाय त्रिःपरिक्रम्य भक्तितः॥२॥
श्रीश्रीनिवास आचार्यो गत्वा गोवर्द्धनं त्वरित्
श्रीराधाकृष्णकुण्डस्य समीपे न्यवसत्सुखम् ॥३॥
स्नात्वा प्रतिदिनं तत्र त्रिकालं नियमेन च ।
उभयोः स्तवयोः सम्यक् चकार जपमुत्तमम् ॥४॥

इस प्रकार श्रीश्रीनिवासाचार्य श्रीमद्गुरुदेव के बचनों को सुन, उन्हें दण्डवत्प्रणाम कर, उनकी आज्ञा को सिर पर चढ़ा, उनकी तीन परिक्रमा कर शीघ्र ही श्रीगोवर्द्धन को जा और श्रीराधाकुण्ड एवं श्रीकृष्णकुण्ड के समीप आनंद से निवास कर एवं उन कुण्डों में त्रिकाल स्नान कर श्रीगुरुदेव के उपदिष्ट दोनों स्तोत्रों का उत्तमरीति से जप करते हुए ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥

सिद्धे मन्त्रे तमाहाशु दिव्यवागशरीरिणी ।
सिद्धोऽसि द्रक्ष्यसि क्षिप्रं राधाकृष्णं स्वचक्षुषा ५

श्रीश्रीनिवासाचार्य के जप का मन्त्र जब सिद्ध होगया, तब उनसे 'आकाशवाणी' ने यों कहा कि,—“अब तू सिद्ध होगया, इसलिये शीघ्र ही तू श्रीराधाकृष्ण का प्रत्यक्ष दर्शन पावेगा” ॥ ५ ॥

इति रम्यं वचः श्रुत्वा परमानन्दसंप्लुतः ।
श्रीश्रीनिवास आचार्यो हरिं तुष्टाव सप्रियम् ६

ऐसे रमणीय वचन को सुनकर श्रीश्रीनिवासाचार्य परमानन्द को प्राप्त हुए और श्रीराधाकृष्ण की स्तुति करने लगे ॥ ६ ॥

(श्रीश्रीनिवासाचार्य उवाच ।)

हे हे जनार्दन मुकुन्द हरे मुरारे,
भक्तप्रियाशु वृजनार्त्तिहर प्रसीद ।
नैजं प्रियासहितमत्र मनोहरं मे,
सन्दर्शनं परमदुर्लभमेहि देहि ॥ ७ ॥

हे जनार्दन ! हे मुकुन्द ! हेहरे ! हेमुरारे ! हे भक्तप्रिय ! हेवृजिनार्त्तिहर ! आप मुझपर शीघ्र प्रसन्न होइए । यहां आइए और श्रीप्रियाजी के सहित अपना परमदुर्लभ और मनोहर दर्शन मुझे दीजिए ॥ ७ ॥

नैवास्ति शक्तिरतुला न तपः परं मे,
नैव श्रुतं परममात्मविवेकरम्यम् ।
सन्त्याशिषो मम गुरोरमितप्रभावाः,
दिव्यायुधस्य तव कारुणिकस्य भूमन् ॥८॥

हे भूमन्! (परमात्मन्।) मुझ में न तो अतुला शक्ति (सामर्थ्य) ही है, न परम तपस्या ही है और न आपका परमज्ञान जिस शास्त्र से प्राप्त हो, ऐसे वेदान्त शास्त्र का ज्ञान ही है। मेरे पास जो कुछ भी हैं, वे परम कारुणिक, आप के दिव्यायुध (श्रीसुदर्शनभगवान्) और मेरे श्रीगुरुदेव (श्रीनिम्बार्क) के अमित प्रभाव आशीर्वाद ही हैं॥ ८॥

त्वत्पादपद्ममकरन्दमधुव्रतोऽहं,
नान्यागतिस्त्वदितरेति वदामि सत्यम्।
पापस्त्वहं त्वमसि माधव! पापनाशी,
तस्माद्यथेच्छसि तथैव कुरुष्व नाथ!॥९॥

हे माधव! मैं आपके चरणारविन्द के मकरन्द का भ्रमर हूं, अतएव आपके अतिरिक्त मेरी और दूसरी कोई गति नहीं है, यह सत्य कहता हूं। मैं मूर्त्तिमान् पाप हूं और आप पापों के नाश करने वाले हैं, इसलिये हेनाथ! अब आप जैसा उचित समझिए, वैसा ही कीजिए॥९॥

एवं तु वदतस्तस्य श्रीनिवासस्य धीमतः।
अग्रे प्रादुरभूच्छ्रीमान् राधिकासहितो हरिः १०

इस प्रकार धीमान् श्रीश्रीनिवासाचार्य स्तुति कर ही रहे थे कि उनके सन्मुख श्रीराधिकाजी के साथ श्रीकृष्ण प्रकट होगए॥१०॥

दृष्ट्वा तमद्भुतं रूपं कोटिसूर्यसमप्रभम्।
पपात चरणोपान्ते वाष्पपर्याकुलेक्षणः॥११॥

नाशकन् प्रेमवेगेन स्तोतुं गद्गदया गिरा ।
तवास्मि नाथ ! दासोऽहमित्युक्त्वा प्ररुरोद ह १२

कड़ोरों सूर्यों के समान प्रभावान् श्रीश्रीराधाकृष्ण के अद्भुत रूप का दर्शन करके श्रीश्रीनिवासाचार्य की आंखों में प्रेम के आंसू उमँग आए । वे प्रेम के वेग के कारण और वाणी के गद्गद होजाने के हेतु से श्रीभगवान् की स्तुति न कर सके और— "हेनाथ ! मैं तेरा ही दास हूं"—यों कहकर प्रभु के चरणों में गिर पड़े और रोदन करने लगे ११॥१२

तमुत्थाप्य महाभागं तस्य नेत्रे प्रमृज्य च ।
विहस्योवाच भगवान् प्रियोऽसि मम सुव्रत ! १३
किमिच्छसि वदाशु त्वं वरं ते वितराम्यहं ।
मां प्राप्य नानुशोचन्ति मद्भावा मामकाःक्वचित्

श्रीभगवान् महाभाग श्रीश्रीनिवासाचार्य को उठाकर और उनके नेत्रों के आंसुओं को पोछकर हंसकर यों बोले कि, "हेसुव्रत ! तू हमारा प्यारा है । शीघ्र बता कि तू क्या चाहता है ? हम अभी तुझे वर देते हैं । क्योंकि हमारी भावना में लगे हुए हमारे निज जन हमको पाकर फिर कभी भी शोक को नहीं पाते हैं ॥१३॥१४॥

इति श्रुत्वा हरेर्वाक्यं श्रीनिवास उवाच तम् ।
नाहं वृणे वरं चान्यं यत्त्वत्तो त्वदनुग्रहात् ॥१५

श्रीभगवान् के ऐसे वचनों को सुनकर श्रीश्री-

निवासाचार्य ने उनसे यों कहा कि हे भगवन् ! मैं आपसे "आपके अनुग्रह के अतिरिक्त" और कोई भी अन्य वरों की याञ्चा नहीं करता ॥१५॥

विहस्योवाच भगवान् "तथास्तु" शृणु मामक !
धन्योऽसि कृतकृत्योऽसि,मद्भक्तोऽसि प्रियोऽसि मे
छन्दांस्ययातयामानि भविष्यन्तीह तत्र च ।
भाष्यकारो भवाशु त्वं कलिकाले ममाज्ञया ॥१७॥
संस्थापयाशु भद्रं ते धर्मं भागवतं मम ।
तेन कीर्त्तिं परां प्रीतिं काले प्राप्स्यसि पुत्रक १८

श्रीश्रीनिवासाचार्य के ऐसे वचन को सुनकर श्रीभगवान् ने उनसे "तथास्तु" कहा और यों कहा कि हे मेरे प्यारे ! सुन,–तू धन्य है, तू कृतकृत्य है, तू मेरा भक्त है और तू मेरा प्रिय है । तुझे सारे छन्द (वेद) ऐसे स्मरण होजायंगे कि मानो उन्हें अभी पढ़ा हो । सो यह बात इस लोक में और परम धाम में मेरे समीप रहने पर भी बनी रहेगी । अब मेरी आज्ञा से तू ब्रह्मदर्शन का आदि भाष्यकार हो और कलिकाल में हमारे भागवतधर्म का संस्थापन कर । इससे तेरा कल्याण होगा और यथासमय परमा कीर्त्ति और हमारी परमा प्रीति को, हेपुत्र ! तू प्राप्त करेगा ॥१६॥१७॥१८॥

इत्युक्त्वान्तर्दधे क्षिप्रं श्रीमान् राधिकया सह ।
भगवानप्रमेयात्मा सर्वभूतहृदि स्थितः ॥ १९ ॥

यों कहकर शीघ्रही श्रीराधिकाजी के साथ श्रीमान् श्रीभगवान् अन्तर्धान होगए; क्योंकि आप अप्रमेयात्मा और सब प्राणिमात्रों के हृदयों में स्थित रहते हैं। (उनकी महिमा को कौन जान सकता है। क्योंकि जो अप्रमेयात्मा भगवान् सब जीवों के हृदय में स्थित रहते हैं, वही सर्वशक्तिमान् यदि अनुग्रह पूर्वक अपने अनन्य भक्तों को दर्शन दे देवें, तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है। क्योंकि सारा विश्व ब्रह्माण्ड भगवान् के अधीन है और स्वयं भगवान् भक्तों के आधीन हैं। ऐसा ही आपका वचन भी है कि,—"अहं भक्तपराधीनः") १९

अन्तर्हिते भगवति श्रीनिवासो मुनीश्वरः,
ददर्श सम्मुखे देवं गुरुं निम्बार्कमीश्वरम् ॥२०॥
मन्दं मन्दं हसन्तं स्वं शिष्यं पश्यन्तमादरात्,
वदन्तं "तात!धन्योऽसिहरिर्जातोऽक्षिगोचरः"२१

श्रीभगवान् के अन्तर्धान होने पर मुनीश्वर श्रीश्रीनिवासाचार्य ने अपने श्रीगुरुदेव साक्षात् परमेश्वर श्रीनिम्बार्काचार्य को देखा! किस प्रकार देखा कि वे (श्रीनिम्बार्क) मन्द मन्द हँस रहे हैं, अपने शिष्य (मुझे अर्थात् श्रीनिवासाचार्य को) आदर पूर्वक देख रहे हैं और यों कह रहे हैं कि, "हे तात ! (हे पुत्र !) तू धन्य है, क्योंकि श्रीभगवान् तेरे नेत्रगोचर हुए, अर्थात् तूने श्रीराधाकृष्ण का प्रत्यक्ष दर्शन पाया ॥२०॥२१॥

दृष्ट्वा गुरुवरं देवं प्रसादसुमुखं प्रभुम् ।
पतित्वा चरणोपान्ते श्रीनिवासो महामुनिः २२
प्रोवाच परया भक्त्या नाथ ! तेऽनुग्रहादहम् ।
कृतार्थोऽस्मि प्रसादाच्च हरिर्जातोऽक्षिगोचरः २३

प्रसादसुमुख, प्रभु, देव, निज श्रीगुरुवर को देखकर श्रीश्रीनिवासाचार्य महामुनि उनके चरणों में गिर पड़े और परमभक्ति पूर्वक यों कहने लगे कि,—" हे नाथ ! आपके अनुग्रह और प्रसाद (प्रसन्नता) से श्रीभगवान् ने मुझे प्रत्यक्ष दर्शन दिया, अतएव मैं अब कृतार्थ होगया ॥२२॥२३॥

श्रुत्वा शिष्यवचः श्रीमानुवाच परमं वचः ।
त्वद्विधं शिष्यमादाय जातोऽहमपि धन्यकः २४

निज शिष्य के ऐसे वचन को सुनकर श्रीमान् (श्रीनिम्बार्क भगवान्) ऐसे श्रेष्ठ वचन को कहने लगे कि हे पुत्र ! तेरे समान शिष्य को पाकर आज हम भी धन्य हुए ॥२४॥

इदानीं कुरु ताताशु वाक्यार्थे भाष्यमुत्तमम् ।
ममाज्ञया कलौ नष्टं सम्प्रदायं प्रकाशय ॥ २५ ॥

हे तात ! (हे पुत्र !) अब तू हमारी आज्ञा से "श्रीब्रह्मसूत्र" पर जो हमारा "वाक्यार्थ" है, उस पर अपूर्व "भाष्य" की रचना कर और कलिकाल में नष्ट वैष्णवसम्प्रदाय को पुनः प्रकाशित कर ॥२५॥

इत्युक्त्वान्तर्दधे श्रीमान् श्रीनिम्बार्को मुनीश्वरः
श्रीश्रीनिवास आचार्यो गोवर्धनगिरौ शुभे २६

श्रीराधाकृष्णकुण्डस्य समीपे न्यवसत्सुखम् ।
आज्ञां हरेर्गुरोश्चैव यथाविधि समाकरोत् ॥२७॥

यों कहकर श्रीनिम्बार्क महामुनीश्वर अन्तर्धान होगए। तब श्रीश्रीनिवासाचार्य श्रीराधाकुण्ड-श्रीकृष्णकुण्ड के समीप कल्याणकारक श्रीगोवर्द्धन गिरि में सुखपूर्वक निवास करते हुए और श्रीहरि की तथा श्रीगुरुदेव की आज्ञा का यथाविधि पालन करते हुए ॥२६॥२७॥

वेदान्तपारिजातस्य भाष्यं वेदान्तकौस्तुभम् ।
गीतोपनिषदादीनां सारं भाष्यतया व्यधात् २८

इस प्रकार श्रीश्रीनिवासाचार्य ने श्रीब्रह्मसूत्र पर जो श्रीनिम्बार्क भगवान् का "वेदान्तपारिजात" नामक 'वाक्यार्थ' है, उस पर "वेदान्तकौस्तुभ" नामक भाष्य बनाया, तथा गीता एवं अन्य अष्टादशोपनिषदों का भाष्य बनाया ॥२८॥

श्रुतिस्मृत्यविरोधं हि भिन्नाभिन्नं प्रकाशयन् ।
विश्वाचार्याद्यनन्तैश्च शिष्यैर्दिग्विजये ययौ २९

श्रुतिस्मृति से अविरोध जो सत्य भिन्नाभिन्न (द्वैताद्वैत) मत है, उसका प्रकाशन करके श्रीश्रीनिवासाचार्य निज श्रीविश्वाचार्य आदि अनन्त (अगणित) शिष्यों के साथ दिग्विजय करने अर्थात् पाषण्डमत का मर्दन करके अनादि वैदिक वैष्णव-सत्सम्प्रदाय का यथावत् प्रचार करने के लिये अपने आश्रम से पधारे ॥२९॥

कृत्वा दिग्विजयं पूर्णं त्रिः परिक्रम्य भारतम् ।
सर्वानधार्मिकान् जित्वा स्थाप्य धर्मं सनातनम्
तत्र तत्र स्वकान् शिष्यान् संस्थाप्य च यथाविधि
गुरोः सकाशमागत्य प्रणिपत्य पुनः पुनः ॥३१॥
गोवर्द्धनं समासाद्य विष्णुभक्तो जितेन्द्रियः ।
शिष्यानध्यापयामास श्रीनिवासोमुनीश्वरः ३२

मुनीश्वर, जितेन्द्रिय, विष्णुभक्त, श्रीश्रीनिवासाचार्य पूर्णरूप से दिग्विजय कर, भारतवर्ष की तीन परिक्रमा कर, समस्त अधार्मिकों को जीत, वैष्णव धर्म का भलीभांति प्रचार कर, स्थान स्थान में अपने शिष्यों को विधिपूर्वक नियत कर, निज गुरुदेव श्रीनिम्बार्क महामुनि के समीप आ, और उन्हें वारंबार दण्डवत्प्रणाम करके अपने आश्रम श्रीगोवर्द्धन में आकर शिष्यों को वेदादि सच्छास्त्रों का अध्ययन कराने लगे ॥३०॥३१॥३२॥

इत्याचार्यचरित्रस्य विश्रामे विश्वसंज्ञके ।
श्रीनिवासार्यवर्यस्य दिग्जयः कथितः शुभः॥३३॥

इस प्रकार श्रीमदाचार्यचरित के त्रयोदश विश्राम में श्रीश्रीनिवासाचार्यवर्य का शुभ दिग्विजय कहा गया ॥३३॥

इतिश्री श्रीमदाचार्यचरितस्य त्रयोदशो
विश्रामः समाप्तः ॥ १३ ॥

॥ ४८० ॥

श्रीश्रीराधाकृष्णाभ्यान्नमः।

एवं श्रीश्रीनिवासस्य कथिता महिमा मया।
श्लोकत्रयी च तस्यैव प्रोच्यते स्तुतिरूपिका १

इस प्रकार श्रीश्रीनिवासाचार्य की महिमा का वर्णन मैंने किया। उनकी स्तुतिवाली "श्लोकत्रयी" सुनो॥ १॥

शंखावतारः पुरुषोत्तमस्य,
यस्य ध्वनिः शास्त्रमचिन्त्यशक्तेः।
यत्स्पर्शमात्राद् ध्रुव आत्मकाम-
स्तं श्रीनिवासं शरणं प्रपद्ये॥ २॥ १॥

जिन अचिन्त्यशक्ति पुरुषोत्तम भगवान् के शंख की ध्वनि ही शास्त्र है और जिस शंख के स्पर्शमात्र से ध्रुवजी अपने सम्पूर्ण मनोरथों को पा गए थे, उन्हीं शंख के अवतार श्रीश्रीनिवासाचार्य के शरण में हम प्राप्त होते हैं॥ २॥ १॥

श्रीमन्निम्बदिवाकरांघ्रियुगल-
ध्यानामृताऽऽपानतो,
वेदान्ताम्बुधिमाकलय्य सहसा,
वालोड्य स्वाभाविकम्।
भिन्नाभिन्नमतामृतं चिदचित-
श्चापाययत्स्वाश्रिताँ-
स्तं सर्वज्ञमनन्तशक्तिकमहं,
श्रीश्रीनिवासं भजे॥ ३॥ २॥

श्रीनिम्बार्क भगवान् के युगल चरणारबिन्दों के ध्यानरूपी अमृत के पान करने से अनायास ही वेदान्तरूपी समुद्र का मथन करके जिन महानुभाव ने चित् और अचित् के "स्वाभाविक भेदाभेद" सिद्धान्तरूपी अमृत को निजजनों को पिलाया, उन अनन्त-शक्तियुक्त, सर्वज्ञ, श्रीश्रीनिवासाचार्य का हम भजन करते हैं ॥ ३ ॥ २ ॥

यो वै भारतखण्डमण्डलगतान्,
पाषण्डवादान्वितान् ।
श्रीमद्व्यासमुखाब्जजामृतरसं,
युक्त्या परं दूषकान् ।
वेदान्तार्थविरुद्धवादरचनैः,
सिद्धान्तविप्लावकान् ।
जित्वा भागवतं च येन थिततं,
तं श्रीनिवासं भजे ॥ ४ ॥ ३ ॥

सारे भारतवर्ष में फैले हुए पाषण्डमतवालों को, जो कि श्रीमद्वेदव्यासजी के मुखारविन्द से निकले हुए अमृत (ब्रह्मसूत्र) में अपनी तुच्छ युक्तियों से दूषण दे रहे थे, तथा वेदान्तसिद्धान्त के विरुद्ध बाद-विवाद खड़ा करके सत्यसिद्धान्त को डुबा रहे थे, उन कुतर्कपरायण नास्तिकों को बाद में जीत कर जिन्होंने समस्त भारतवर्ष में "भागवतधर्म" का विस्तार किया, उन श्रीश्रीनिवासाचार्य का

हम भजन करते हैं ॥ ४ ॥ ३ ॥

विश्वाचार्येण कथितं स्तोत्रं पठति यः सदा।
स नरः श्रीनिवासस्य कृपया तत्त्वभाग्यभवेत् ५

श्रीश्रीविश्वाचार्य के कहे हुए इस स्तोत्र को जो लोग नित्य पढ़ते हैं, वे लोग श्रीश्रीनिवासाचार्य की कृपा से "तत्त्व" ज्ञान को पा जाते हैं ॥५॥

चरितं श्रीनिवासस्य प्रोक्तं संक्षेपतोऽधुना।
विस्तरं तु पुनर्वक्ष्ये तस्य दिग्विजये शुभे ॥ ६ ॥

श्रीश्रीनिवासाचार्य का चरित यहां पर तो बहुत ही संक्षेप में कहा गया है; किन्तु उनके विस्तृत चरित को फिर से उनके कल्याण-कारक "दिग्विजय" नामक 'खण्ड' में कहेंगे ॥ ६ ॥

इत्याचार्यचरित्रस्य विश्रामेऽथ चतुर्दशे।
श्रीनिवासार्यदेवस्य स्तोत्रमेतदुदीरितम् ॥ ७ ॥

इस प्रकार 'श्रीआचार्यचरित' के चौदहवें विश्राम में श्रीश्रीनिवासाचार्यदेव का यह 'श्लोकत्रयी' नामक स्तोत्र कहा गया ॥ ७ ॥

इतिश्रीश्रीमदाचार्यचरितस्य चतुर्दशो
विश्रामः समाप्तः ॥ १४ ॥
॥ ४८७ ॥

श्रीश्रीराधाकृष्णाभ्यान्नमः ।

पाषण्डपादपविदाहकचण्डवह्निं,
अत्यन्तपुष्करविकासनभानुरूपम् ।
वादप्रगल्भगिरिखण्डनवज्रतुल्यं,
श्रीश्रीनिवासमनिशं गुरुवर्यमीडे ॥१॥

पाषण्डरूपी वृक्ष के भस्म कर डालने के लिये प्रचण्ड अग्निस्वरूप, श्रुतिसिद्धान्तरूपी पुष्कर के प्रफुल्ल करने के लिये सूर्यस्वरूप और विवाद करने में ढीठ, वादीरूप पर्वत के बिदारण करने में वज्र के समान, गुरुवर्य श्रीश्रीनिवासाचार्य को हम निरन्तर स्तुति करते हैं ॥ १ ॥

वादप्रगल्भमतवादिमहागजानां,
साक्षान्मृगेन्द्रसदृशं श्रुतिवादनादम् ।
क्लेशाब्धपारजलधेर्घटयोनिमग्र्यं,
श्रीश्रीनिवासमनिशं गुरुवर्यमीडे ॥ २ ॥

बिवाद करने में महा ढीठ,मतवादी गजेन्द्रों के लिये साक्षात् श्रुतिवाद का नाद करते हुए मृगेन्द्र के सदृश, और क्लेश आदि अपार समुद्र के सोखने के लिये साक्षात् अगस्त्यमुनि के समान, गुरुवर्य श्रीश्रीनिवासाचार्य की हम निरन्तर स्तुति करते हैं ॥ २ ॥

प्रह्लादवेदपरिताडनतत्परस्य,
दैत्याधिपस्य परतर्कमहामतस्य ।

मायादिवादकुशलस्य नृसिंहरूपं,
श्रीश्रीनिवासमनिशं गुरुवर्यमीडे ॥ ३ ॥

प्रल्हादरूपी वेद के विनष्ट करने के लिये तत्पर, परतर्करूप महामतवाले, मायादि वाद करने में कुशल, दैत्यराज (हिरण्यकशिपु) के लिये जो नृसिंहभगवान् के समान हैं, उन गुरुवर्य श्रीश्री-निवासाचार्य की हम निरन्तर स्तुति करते हैं ॥३॥

संसारतापशमनाय निजाश्रितानां,
रक्षादिपञ्चकरणादिसुधाकरं वै ।
स्वापन्नकर्मभुजगस्य हि वैनतेयं,
श्रीश्रीनिवासमनिशं गुरुवर्यमीडे ॥ ४ ॥

अपने आश्रित जनों के संसाररूपी ताप को दूर करने के लिये पञ्चप्रकार संस्कारादिक से रक्षा करनेवाले चन्द्रमा के समान, तथा स्वार्थमयकर्मरूपी सर्प के लिये साक्षात् गरुड़स्वरूप, गुरुवर्य श्रीश्री-निवासाचार्य की हम निरन्तर स्तुति करते हैं ॥४॥

ज्ञानामृतार्णवसुधाकरमद्वितीयं,
सद्भक्तवृन्दपरिरक्षणतत्परं च ।
ब्रह्मस्वरूपमपरं हरिदासदेवं,
श्रीश्रीनिवासमनिशं गुरुवर्यमीडे ॥ ५ ॥

ज्ञानामृतसागर के अद्वितीय चन्द्रमा, सद्भक्त-वृन्दों की रक्षा में तत्पर, अपर ब्रह्मस्वरूप, हरिदासों के देवता, गुरुवर्य श्रीश्रीनिवासाचार्य की हम

निरन्तर स्तुति करते हैं ॥ ५ ॥

भक्त्यर्णवाम्बुजविभाकरमप्रमेयं
सत्कर्मपद्ममकरन्दमधुव्रताग्र्यम् ।
पद्मासनस्थमखिलागमबोधसिन्धुं,
श्रीश्रीनिवासमनिशं गुरुवर्यमीडे ॥ ६ ॥

भक्तिरूप समुद्र के कमल के प्रफुल्ल करने के लिये अप्रतिम सूर्य, सत्कर्मरूपी कमल के मकरन्द के प्रधान भ्रमर, पद्मासन से विराजमान, सम्पूर्ण आगमों के ज्ञान के सागर, गुरुवर्य श्रीश्रीनिवासाचार्य की हम स्तुति करते हैं ॥ ६ ॥

राधाप्रियस्य नववारिजलोचनस्य,
कृष्णस्य भक्तपरिरक्षणतत्परस्य ।
सेवाविधौ परमतत्परचित्तवृत्तिम्,
श्रीश्रीनिवासमनिशं गुरुवर्यमीडे ॥ ७ ॥

भक्तों की रक्षा में लगे हुए, नव कमलदल लोचन, श्रीराधिकाजी के प्यारे, श्रीकृष्ण की सेवा विधि में जिनकी चित्तवृत्ति पूर्णरूप से लगी हुई है, उन गुरुवर्य श्रीश्रीनिवासाचार्य की हम वारंवार स्तुति करते हैं ॥ ७ ॥

वेदव्रतं मुनिवरं परमं वरिष्ठं,
निम्बार्कशिष्यमपरं हरिरूपरूपम् ।
संसारतापशमनं सुखदं सुरम्यं,
श्रीश्रीनिवासमनिशं गुरुवर्यमीडे ॥ ८ ॥

वेदव्रत, मुनिवर, परमश्रेष्ठ, श्रीनिम्बार्क भगवान् के शिष्य, श्रीहरि के दूसरे रूप, संसार के तीनों तापों के दूर करनेवाले, सुख के दाता, तथा परम रमणीय, गुरुवर्य श्रीश्रीनिवासाचार्य की हम वारंवार स्तुति किया करते हैं ॥ ८ ॥

इत्यष्टकं मुनिवरस्य मुकुन्दमूर्त्तेः,
सद्भक्तिदं परमशोभनमद्वितीयम् ।
नित्यं पठन्ति भुवि ये मनुजाश्च धन्या-
स्ते प्राप्नुवन्ति हरिभक्तिमुदारभावाम् ९

मुकुन्द भगवान् की मूर्त्ति, मुनिवर श्रीश्रीनिवासाचार्य का यह "अष्टक" परमशोभन, अद्वितीय और सद्भक्ति का देनेवाला है। संसार में इसे जो लोग नित्यप्रति पढ़ते हैं, वे मनुष्य धन्य हैं और वे उदारभावा श्रीहरिभक्ति को पा जाते हैं ९

श्रीहंसं सनकादींश्च नारदं निम्बभास्करम् ।
श्रीश्रीनिवासमाचार्यं भाष्यकारं भजेऽनिशम् १०

श्रीहंस, श्रीचतुःसन, श्रीनारद, श्रीनिम्बार्क और भगवान् भाष्यकार श्रीश्रीनिवासाचार्य का हम निरन्तर भजन करते हैं ॥ १० ॥

श्रीमन्निम्बदिवाकरांघ्रिजलजं,
तापत्रयोन्मूलनम् ।
वेदान्ताम्बुजमाधुरीरससुधा-
मत्तालिभिः सेवितम् ॥